962

~~[illegible]~~

~~[illegible]~~

~~२२~~

३/२८

[illegible]

६१

# मानस-प्रसङ्ग

लेखक

"मानस-राजहंस" पंडित विजया नंदजी त्रिपाठी

मूल्य ।=)

# मानस-प्रसङ्ग

[ प्रथम भाग ]

श्री १०८ ... पुस्तकालय ... काशी

लेखक

"मानस-राजहंस" पंडित विजयानन्द जी त्रिपाठी

प्रकाशक
मन्त्री—मानससंघ
पो० रामबन,
वाया सतना।

मुद्रक
माधो प्रिंटिंग वर्क्स,
इलाहाबाद।

# धन्यवाद

मानस सङ्घ श्री रामचरितमानस के प्रचार के लिये हर उचित उपाय का अवलंबन कर रहा है। पुस्तकोंका प्रकाशन एक उत्तम उपाय है। सङ्घ अभी छोटी छोटी पुस्तकों का ही प्रकाशन कर रहा है। हर्ष है कि देश के मानसी विद्वान इस कार्य में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

मानस प्रसङ्ग श्री मानस राजहंस पं० विजयानन्द जी त्रिपाठी की लेखनी का प्रसाद है। 'सन्मार्ग' के विभिन्न अङ्कों में यह क्रमशः छप चुका है। पूज्य त्रिपाठी जी ने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करने की अनुमति संघ को देने की कृपा की है, इसके लिये हम उनके विशेष आभारी हैं। आपका सहयोग सङ्घ के लिये गौरव की बात है।

कागज की कठिनाई के कारण पूर्ण पुस्तक एक साथ न छप कर कई भागों में प्रकाशित हो रही है। प्रेमी ग्राहकगण इसके लिये क्षमा करेंगे।

निवेदक
शारदाप्रसाद
मन्त्री
मानस सङ्घ

पुस्तकालय, ... काशी।

# मानस-प्रसङ्ग

कविकुल-चूड़ामणि भक्ताग्रगण्य श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने जिस भाँति श्रीरामचरितमानस में 'शत पञ्च चौपाई' लिखकर दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाना है, उसी भाँति आठ दोहों में मानस प्रसङ्ग लिख-कर श्रीरामचरितमानस के हृदय का निरूपण भी किया है। जिनके बिना समझे श्रीरामचरितमानस वस्तुतः लगता नहीं।

'तीन लोक बाहर चलें, शायर सिंह सपूत' इस लौकिकोक्ति को श्रीगोस्वामी जी ने कार्य्यान्वित करके दिखलाया है। इस मानस प्रसङ्ग के मनन करने से कभी कभी अपना ही चित चकित हो जाता है कि क्या वस्तुतः गोस्वामीजी ने जानबूझ कर ऐसा लिखा है या मैं ही कल्पना के वायुयान् पर पड़ा चला जा रहा हूँ। परन्तु जब ठोस प्रमाण हाथ लगते हैं, तब कैसे कहा जाय कि यह मेरी निज की निर्मल कल्पना है। अतः जो कुछ गुरुमुख से सुना है, या श्रीगुरुपदेश के आधार पर मनन किया है, उसे आप लोगों के सन्मुख उपस्थित करता हूँ।

मेरा इतना साहस न पड़ता यदि आपलोगोंने मेरी शतपञ्च चौपाई की टीका का इतना जोरदार स्वागत न किया होता। मैंने पूरे श्रीराम-चरित मानस पर टीका लिखी है, पर वह अभी खर्रे के रूप में ही है, उसकी भाषा सँवार कर फिर से लिखने को आवश्यकता है, और मेरे स्वास्थ्य की दशा जैसी गिरती जा रही है, इससे मुझे इस बात की आशा बहुत कम है कि मैं उस आवश्यकता को पूरी कर सकूँगा। अतः मैं इस मानस प्रसङ्ग की टीका आप लोगों की सेवा में समर्पण करके ही अपने को कृतकृत्य समझूँगा, क्योंकि इसमें उन रास्तों का ही विवेचन है जिन्हें पकड़कर मैंने टीका लिखने का यत्न किया है।

मेरे लिखने में चाहे जो त्रुटियाँ हों पर इस बात को मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि श्रीरामचरितमानस लगाने का साम्प्रदायिक मार्ग है और उसे बिना जाने यह ग्रन्थ नहीं लग सकता। अतः मैं आशा करता हूँ कि यह टीका कम से कम हमारे छोटे भाइयों को ग्रन्थ लगाने में सहायक होगी; और वे नई दृष्टि पाकर प्रसन्न होंगे। केवल अपनी ही बुद्धि का आश्रय करके कोई यथेष्ट उन्नति नहीं कर सका है। कहा भी है कि "कियद्वा शक्यमुन्नेतुं स्वतर्कमनुधावता'।

प्रायेण सभी समालोचकों ने गोस्वामीजी को रूपक का बादशाह माना है, और बात भी कुछ ऐसी ही है। उनका समस्त ग्रन्थ वस्तुतः एक बड़ा भारी रूपक है। इस महात्माने निःसन्देह मानस-सरोवर की यात्रा की है। और मानस-सरोवर इस संसार में एक ऐसा अद्भुत स्थल है, जिसकी मनोहारिणी छटा देखकर बड़े २ पर्य्यटनशील मन्त्रमुग्ध से हो जाते हैं। और उनका चित्त उसे छोड़ने को नहीं चाहता। गृहस्थी के प्रबल आकर्षण से ही खिचकर वे उसे दुःखी मन से छोड़ते हैं।

जब साधारण लोगों की यह गति है, तब परम भावुक कवि शिरोमणि की उस मनोहारिणी छटा को देखकर क्या अवस्था हुई होगी, और उनके सरल हृदय में कैसी कल्पना की तरङ्गें उठी होंगी। ऐसी अवस्था में श्रीरामचरित का जो कि उनका जन्म से परम ध्येय तथा जीवन सर्वस्व रहा है उस मानससरोवर के साथ तुलना करना स्वाभाविक ही है। विशेषतः जब कि उसके साथ का ही दूसरा सरोवर रावणहृद के नाम से विख्यात है।

अतः यह मानस प्रसङ्ग ठीक तरह से तो उसी के हृदय में प्रतिभात हो सकता है जो स्वयम् मानसयात्रा कर चुका हो। पर मेरा वैसा सौभाग्य नहीं था, अतः मैंने मानस-यात्रा विवरण पढ़ कर ही सन्तोष किया और उसी से बहुत सी बातें मेरी समझ में आईं!

जैसे—मानसयात्रियों ने उस विशाल सरोवर की बड़ी भारी शोभा चाँदनी रात के समय होने का वर्णन किया है जब कि भगवान् निशानाथ नक्षत्र मण्डल तथा तारागणों के साथ उसके दर्पण से स्वच्छ अङ्क में प्रतिबिम्बित होते हैं। यह भावना चित्त में आते ही यह विचार उठा कि फिर इस श्रीरामचरितमानस में वे प्रतिबिम्बित निशानाथ तथा तारागण कौन होंगे, तब यह दोहा याद पड़ा—

"राका रजनी भगति तव, रामनाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन सरिस, बसहु भगत उर व्योम॥"

"श्रीकौशल्यानन्दवर्धन की भक्ति ही पूर्णिमा की रात है" रामनाम पूर्ण चन्द्र है, दूसरे नाम मुकुन्द गोविन्दादि सब तारे हैं। ये भक्त के हृदय में बसते हैं।" ठीक है बसेंगे नहीं तो रामचरित सर में प्रतिबिम्बित कैसे होंगे ?

फिर यह चिन्ता उठी कि निशानाथ तो नक्षत्रपति हैं, नक्षत्रमण्डल में ही चक्कर काटते फिरते हैं, उन नक्षत्रों का भी पता लगना चाहिये। सो यह काम टेढ़ा था, वर्षों चक्कर में पड़ा रहा, एक दिन रामायण पाठ करते करते श्रीगोस्वामी जी के चरण की कृपा से नक्षत्रमाला में ही जाकर उलझ गया, चकित होकर देखने लगा कि इन चौपाइयों की संगति कैसे बैठेगी ? चौपाइयाँ ये थीं।

"जगमंगल गुन ग्राम राम के" ( १ )
दानि मुकुति धन-धरम-धाम के ( २ )
सद्गुरु ज्ञान विराग जोग के ( ३ )
बिबुध बैद भव भीम रोग के ( ४ )
जननि ( ५ ) जनक सियराम प्रेम के ( ६ )
बीज सकल व्रत धरम नेम के ( ७ )
समन पाप संताप-सोक के ( ८ )

प्रिय पालक परलोक लोक के ( ९ )
सचिव ( १० ) सुभट भूपति विचार के ( ११ )
कुंभज लोभ उदधि अपार के ( १२ )
काम कोह कलिमल करिगन के।
केहरि सावक जन-मन वन के ( १३ )
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के ( १४ )
कामद धन दरिद दवारि के ( १५ )
मंत्र महा मनि विषय-ब्याल के ( १६ )
मेटत कठिन कुअङ्क भाल के ( १७ )
हरत मोह तम दिनकर कर से ( १८ )
सेवक सालि पाल जलधर से ( १९ )
अभिमत दान देव तरुवर से ( २० )
सेवत सुलभ सुखद हरिहर से ( २१ )
सुकवि सरद नभ मन उड्गनसे ( २२ )
राम भगत जन जीवन धन से ( २३ )
सकल सुकृत फल भूरि भोग से ( २४ )
जगहित निरुपधि साधु लोग से ( २५ )
सेवक-मन-मानस-मराल से ( २६ )
पावन गंगा तरंग माल से ( २७ )
कुपथ कुतर्क कुचालि कलि कपट दंभ पाखण्ड।
दरन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड ( २८ )

ये अट्ठाइस प्रकार के फल देने वाले गुणग्राम क्या हैं? यदि मनुष्य सोचता रहे तो किसी न किसी दिन भगवती सत्योक्ति की कृपा से सत्य का स्फुरण हो ही जाता है। बात मन में आ गई, सरकार के सभी नाम गौण हैं, गुणसूचक हैं। जब एक एक गुण तारे हुए तो गुणग्राम का नक्षत्र होना सिद्ध ही है। अभिजित् के साथ नक्षत्र की संज्ञा भी

अट्ठाइस हो जाती है। अब देखता हूँ तो श्री रामचरित-मानस में २८ स्तुतियाँ हैं। स्तुति और गुणग्राम दो वस्तु नहीं हैं। ये चौपाइयाँ उन्हीं की फल-श्रुति कह रही हैं, यथा-'जगमङ्गल गुणग्राम रामके' यह ब्रह्म-स्तुति की फलश्रुति है 'दानि मुकुति धन-धर्म-धाम के' यह कौसल्या कृत स्तुति की फलश्रुति है। इत्यादि।

इतना नहीं, इसके लिये ठोस प्रमाण भी मिलते गये। जितना ही इस विषय में विशेष मनन किया, उतना हीं इसकी सत्यता में दृढ़ विश्वास होता गया। प्रत्येक नक्षत्र में कै तारे चमकते हैं, और उस नक्षत्र का रूप कैसा है? यह सब विषय ज्योतिष्शास्त्र से देखा गया। तो वैसे आकार के कारण, तारों के चमक का भी पता लगा। विषय के विस्तृत हो जाने तथा इस स्थान पर अनुपयुक्त होने से प्रादेशमात्र दिखला दिया गया है।

ऐक बात और बड़े मारके की है, जिसका उल्लेख कर देना मैं अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ। और वह यह है कि जब मैंने नक्षत्र की सूची में २५ वें नक्षत्र का शततारक नाम पाया तो बिलकुल हताश सा हो गया कि किसी भी स्तुति में १०० तारों की चमक मिलना दुस्तर है। पर मेरे आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा, जब २५ वीं स्तुति में मैं देखता हूँ तो लिखा है—

"राम काम सत-कोटि सुभग तन!
दुर्गा कोटि अमित अरि-मर्दन ॥
बिस्नु कोटि सत पालन-कर्ता।
रुद्र कोटि सत सम-संहर्ता" ॥ आदि

प्रकृतमनुसरामः—मानसयात्रा के पाठ से मानस-सर के विस्तार, उसका कैलाश का सन्निधान, तथा उसके मार्ग में दुर्लङ्घ पर्वत और नदियों का होना, और मार्ग की कठिनाई आदि का थोड़ा बहुत आभास मिला, जिससे ग्रन्थ समझने में सुभीता हुआ।

उसी मानस-सर से ही सरयू-नदी का निकलना कहा जाता है। श्रीगोस्वामीजी ने अपनी कविता को सरयू ही माना है। यथा—

"भयउ हृदय आनन्द उछाहू ।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू ॥
चली सुभग कविता सरिता सो।
राम विमल जस जल भरिता सो ॥
सरयू नाम सुमंगल मूला ।
लोक-वेद-विधि-मंजुल कूला ॥"

यथास्थान मैं इन सब बातों के वर्णन करने का प्रयत्न करूँगा। यह प्रसङ्ग ऐसा है कि उसमें सम्पूर्ण रामचरितमानस का कहना प्राप्त है। अतः टीका के विस्तार से जो पाठक घबड़ाते हैं, उनसे मैं क्षमा मागूँगा। वस्तुतः यह टीका ऐसे पाठकों के लिये लिखी भी नहीं गई है, जिन्हे श्रीरामचरित-सर में अवगाहन के लिये समय नहीं है, या जो अवगाहन के अनिच्छुक हैं। यह टीका उन्ही भाग्यवानों की थोड़ी बहुत सहायता कर सकती है, जिन्हें श्रीरामचरित 'स्वादु स्वादु पदे' मालूम पड़ता हो।

श्री भुशुण्डि-मूल-रामायण के ८४— प्रसङ्गों में से यह पहिला प्रसङ्ग है। यथा—

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी।
राम चरित सर कहेसि बखानी ॥"

इस श्रीराममानस में चार वक्ता हैं:—( १ ) श्रीगोस्वामी जी ( २ ) श्रीयाज्ञवल्क्य जी ( ३ ) श्रीशङ्कर जी और ( ४ ) श्रीभुशुण्डि जी। इनके मानसों में भी कुछ सूक्ष्म भेद हुई है, फिर भी गोस्वामी जी ने अपने मानस में चार घाट बनाकर प्रत्येक घाट के लिये वक्ता और श्रोता नियत कर दिये हैं। जिसमें रास्ता अलग-अलग होने पर भी प्राप्य स्थान एक

ही रहे। रूपक में जहाँ कहीं भेद पड़ा है, उसे किसी न किसी जगह व्यक्त कर दिया है। यथा—

'जे पदसरोज मनोज अरि उर सर सदैव विराजहीं'

इससे पता चलता है कि श्री शिवजी के 'मानस-सर' में सरकार के चरण ही कमल हैं। पर गोस्वामी जो स्पष्ट कहते हैं कि 'छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सो बहु रंग कमल कुल सोहा॥' मेरे मानस-सर में छन्द सोरठा दोहारूपी कमल हैं, मैं सरकार के चरण को मानस का कमल न बना सका। 'जो भुशुण्डि मन मानस हंसा' 'हर हृदय मानस राज मरालं' इन पदों से पता चलता है कि भुशुण्डि जी तथा शंकर जी के मानस-सर में स्वयम् सरकार हंसरूप थे। पर गोसाँई जी कहते हैं कि इतना सौभाग्य मेरा नहीं है, मेरे मानस में तो 'ज्ञान विराग विचार मराला' हैं। रूपक के शेष अंग सब में समान मालूम पड़ते हैं।

श्रीपूज्य पितृचरण, मानसमर्मज्ञ पं० रामकुमारजी, पं० देवपलटजी तथा पं० अयोध्याधर दूबेजी उपनाम पाठपंडित के चरणकमलों को मैं सादर प्रणाम करता हूँ, जिनसे मुझे मानस-दर्शन के लिये प्रकाश प्राप्त हुआ। मैं ऐसे समय में अपने मित्र इस समय के अद्वितीय रामायणी पं० श्रीभूषणजी को नहीं भूल सकता, जिनके सत्सङ्ग से मुझे बहुत कुछ लाभ हुआ है।

'वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वन्द्यते"॥

ॐ शान्तिः शान्ति शान्तिः

संवत् १६३१ की रामनवमी के दिन अयोध्यापुरी में यह रामचरित मानस प्रकाशित हुआ, या यों कहिये कि कलि-कुटिल-जीव निस्तार हित श्री १०८ गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा कलियुग के सन्धिकाल में श्री रामावतार ही हुआ। महात्माओं ने श्री रामचरित मानस को जन्म-

कुण्डली ज्योतिषियों द्वारा बनवाई तो मालूम हुआ कि इसके भी ठीक ठीक वे ही ग्रह पड़े हुए हैं जो श्रीरामजी को पड़े थे। दोनों कुण्डलियाँ बिलकुल एक हैं।

श्रीरामचरित मानस के आदि रचयिता शङ्कर भगवान् हैं, उन्होंने ही इसका नामकरण भी किया है, यथा—

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमय शिवा सन भाखा॥
तातें रामचरितमानसवर।
धरेउ नाम हिय हेरि हरखि हर॥
कहउँ कथा सोइ सुखद सोहाई।
सादर सुनहु सुजन मन लाई॥

यहीं से मानस प्रसङ्ग प्रारम्भ हुआ।

जस मानस जेहि विधि भयेउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु॥
बालकाण्ड ( ३५ )

अर्थ—जैसा मानस है, जिस विधि से यह हुआ, और जिस हेतु इसका जगत् में प्रचार हुआ अब उस सब प्रसंग का वर्णन उमा और वृषकेतु शिवजी को स्मरण करके करता हूँ।

जस मानस—यहाँ 'मानस' शब्द से रामचरितमानस अभिप्रेत है। रामचरित मानस में रूपकालङ्कार है। यहाँ आरोप्यविषय रामचरित मानस है और आरोप्यमाण मानस नामक सरोवर है। मानस सर या मानसरोवर कैलास के दक्षिण है। इसे ब्रह्मदेव ने मन से निर्माण किया है, इसीसे इसका नाम मानस-सर है, यथा—"कैलासपर्वते राम मानसा निर्मितं सरः। ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः"। इसका बड़ा माहात्म्य है। इसकी परिधि लगभग साठ मील के है और यह सैकड़ों

फुट गहरा है। इसकी शोभा भी अपरम्पार है, और जल भी अमृत सा है। इसका आरोप रामचरित में इसलिये किया गया कि रामचरित को इसी भांति शङ्कर भगवान् ने रचकर अपने मन में रक्खा। सो बड़ा मनभावन, सुहावन और पावन है, यथा—

"रामचरित मानस मनभावन।
बिरचेउ सम्भु सुहावन पावन॥
त्रिविध-दोष-दुख-दारिद-दावन।
कलि कुचालि कलिकलुष नसावन॥"

"पुण्यं पापहरं सदाशिवकरं विज्ञान-भक्तिप्रदम्। मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्। श्रीमद्रामचरित्र-मानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये। ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः"॥ अतः भली भाँति विचार कर शङ्कर भगवान् ने इसका नाम 'रामचरित मानस' रक्खा।

इसी भाँति भुशुण्डिजी का मानस है, याज्ञवल्क्यजी का मानस है। भावार्थ यह कि वेदार्थ को धारण करके, जब मनन किया जाता है, तो वह रामचरित रूप में परिणत हो जाता है। तब स्पष्ट हो जाता है कि दैव और आसुर दो सर्ग हैं। दैवसर्ग के आदर्श रामचन्द्र हैं और आसुर सर्ग का रावण है। आसुर सर्ग के आधिपत्य से संसार अति पीड़ित हो जाता है और दैवसर्ग से उसका संहार होता है और संसार में सुख शान्ति आती है, यथा—"वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना" बाल्मीकि द्वारा रामायणरूप से वेद का ही अवतार हुआ, और भक्त के भावों को सत्य करके संसार के सामने रखने के लिये स्वयं सरकार अवतरित हुए। इसीलिये कहा जाता है कि बाल्मीकीय रामायण पहिले बनी और रामावतार पीछे हुआ।

जगद्गुरु होने से शङ्करजी का ही मानस अन्य सभी मानसों का उपजीव्य है, यथा—

"सम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा।
बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा॥
सो सिव कागभुसुण्डहिं दीन्हा।
रामभगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहिसन जागबलिक पुनि पावा।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता वक्ता समसीला।
सबदरसी जानहिं हरिलीला॥
जानहिं तीन काल निज ज्ञाना।
करतलगत आमलक समाना॥
औरउ जे हरि भगत सुजाना।
कहहिं सुनहिं समुझहिं विधि नाना॥

पै पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सुसूकर खेत।
समुझि नहि बालपन, तब अति रहेउं अचेत॥

यहाँ पर गोस्वामीजी अपने मानस का स्वरूप कह रहे हैं, उसका वर्णन 'सुचि सुन्दर संवाद वर विरचेउँ बुद्धि विचारि। तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि' से लेकर 'अस मानस मानस चख चाही। भई कवि बुद्धि विमल अवगाही' तक है।

जेहि विधि भयेउ—आरोप्यमाण मानसकी विधि ऊपर कह आये हैं, आरोप्य विषयभूत सभी मानसोंके बनने की पृथक् पृथक् विधि है। शङ्कर भगवान् वेद स्वरूप हैं, यथा—"विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं" अतः उन्होंने स्वयम् रचना की। उनकी श्रोत्री साक्षात् उमा हैं। भुशुण्डि और याज्ञवल्क्य श्रोता नहीं हैं, उन्हें दिया तो शिवजी ने, पर दूसरे के द्वारा। भुशुण्डि जी को लोमश ऋषि के द्वारा मिला, यथा—"मुनि मोहिं कछुक काल तँह राखा। रामचरितमानस तब भाखा।"

याज्ञवल्क्य को भुशुण्डि द्वारा मिला। श्री गोस्वामी जी को गुरु द्वारा मिला। इसका सविस्तार वर्णन 'सुमित भूमि थल हृदय अगाधू' से लेकर 'भरेउ सुमानस सुथिर थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना' तक है।

यद्यपि प्रतिज्ञा में 'जस मानस' पहिले कहकर 'जेहि विधि भयउ' कहा है पर वर्णन में बनने की विधि ही पहिले कही गई, स्वरूप पीछे से कहा है। कारण यह कि स्वरूप प्रदान ही बनना है। बनना समाप्त होते ही स्वरूप पूरा हो जाता है, अतः बनने की विधि पहले कहा।

बन चुकने के बाद स्वरूप पर ही दृष्टि पहिले जाती है, उसके बाद बनने की विधि पर ध्यान जाता हैं, अतः प्रतिज्ञा में स्वरूप वर्णन पहिले कहा तत्पश्चात् वनने की विधि का उल्लेख किया।

जग प्रचार जेहि हेतु—आरोप्यमाण मानस का प्रचार देश में सरयू द्वारा हुआ, जो उसीसे निकली हैं, यथा –"तस्मात् सुस्राव सरसः साऽयोध्यामुपगूहते। सरःप्रवृत्ता सरयू पुण्यब्रह्मसरश्च्युता ॥ १ ॥" उमा-शङ्कर-सम्वाद एकान्त में कैलाश पर्वत के शिखर संस्कृत भाषा में हुआ अतः अध्यात्म रामायण के रूप में प्रकट होने पर भी विरलप्रचार हुआ। यथा—

"परम रम्य गिरिवर कैलासू।
सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥
तेहि गिरि पर वट विटप विसाला।
नित नूतन सुन्दर सब काला॥
एक बार तेहि पर प्रभु गयऊ।
तरु विलोकि उर अति सुख भयउ॥
निज कर डासि नागरिपु छाला।
बैठे सहजहिं सम्भु कृपाला॥

पारवती भल अवसर जानी।
गईं सम्भु पँह मातु भवानी॥
कथा जो सकल-लोक-हितकारी।
सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥"

भुशुण्डि-गरुड़-सम्वाद तो नीलगिरि पर्वत पर (जो इस वर्ष में नहीं है) पक्षी भाषा में हुआ, अतः उसका प्रचार मनुष्यों में हुआ ही नहीं, यथा—

"गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी।
नील सैल एक सुन्दर भूरी॥
उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला।
तहँ रह काग भुसुण्डि सुसीला॥
जाइ सुनहु तँह हरिगुन भूरी।
होइहि मोहजनित दुख दूरी॥
कछु तेहि तें पुनि मैं नहि राखा।
समुझै खग खगही कर भाखा॥"

याज्ञवल्क्य भरद्वाज सम्वाद यद्यपि प्रयागराज में हुआ, पर माघ बीतने पर, फाल्गुन में हुआ, सब मुनि लोग चले गये थे, और संस्कृत भाषा में हुआ, अतः उसका भी प्रचार अति विरल हुआ, यथा—

"एक बार भरि माघ नहाए।
सब मुनीस आश्रमन्हि सिधाए॥
जागवलिक मुनि परम विवेकी।
भरद्वाज राखे पद टेकी॥" इत्यादि

श्री रामचरित मानस का प्रकाश रामनवमी के दिन अयोध्या में सन्त सभा के बीच में, हिन्दी भाषामें हुआ। अतः इसका प्रचार साक्षात् रूप से हिन्दी संसार में हुआ और परम्परा से समुद्र तक चला गया।

'जग प्रचार जेहि हेतु' का वर्णन 'भयउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू' से लेकर 'अब रघुपति-पद पंक-रुह, हिय धरि पाइ प्रसाद। कहहुँ जुगल मुनि वर्ज कर, मिलन सुभग सम्वाद' तक है।

अब—भाव यह कि नामकरण, माहात्म्यकथन के बाद। यथा—

"रामचरित मानस एहि नामा।
सुनत श्रवन पाइय विश्रामा॥
मनि करि विषय अनल बन जरई।
होइ सुखी जौ एहि सर परई॥"

सोइ कहौं प्रसंग सब—अर्थात् स्वरूप प्रसङ्ग।उत्पत्ति विधि प्रसंग, तथा प्रचार हेतु प्रसङ्ग विस्तार के साथ कहूँगा। पहिले संक्षेप में कहा था, यथा—

"पुनि निज-गुरु सन सुनी, कथा सुसूकर खेत।
समुझि नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥
श्रोता वक्ता ज्ञाननिधि, कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़, कलिमल ग्रसित विमूढ़॥"

तदपि कही गुरु बारहिं बारा।
समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषा बद्ध करब मैं सोई।
मोरे हिय प्रबोध जेहि होई॥"

सुमिरि उमा वृषकेतु— माता मैना ने पार्वती जी को अधिक तप करने से रोकना चाहा और कहा 'उमा अब तप न करो' तब से उमा नाम पड़ा, भाव यह कि भगवती तपोमूर्ति हैं यथा—अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी। और 'वृषो हि भगवान् धर्मः'। भगवान् धर्म ही वृष हैं, और वृषकेतु के वे वाहन हैं, अतः

कहा गया कि 'सुन्दर सब गुननिधि बृषकेतू'। एवम् बृषकेतु की श्रा
वल्लभा उमा हैं।

उमा के प्रसाद से वृषकेतु की कृपा हुई अतः पहिले उमा का स्मर
करते हैं, और वृषकेतु की कृपा से सुमति का उल्लास हुआ; अथ
उमा सुमतिरूपा हैं, यथा–'या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता' औ
शिवजी बुद्धिके प्रेरक हैं, यथा 'तुम प्रेरक सबके हृदय, सो मति राम
देहु'; और सुमति भूमिका में ही रामचरित मानस की रचना हुई। अत
"उमा वृषकेतु" का स्मरण प्रसंग कथन के प्रारम्भ में करते थे, अथ
अभेद दृष्टि से शक्ति शक्तिमान का साथ ही स्मरण करते हैं जिस
यथार्थ वर्णन की शक्ति हो, यथा—"तुम माया भगवान् शिव सक
जगत पितु मात।"

सम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी।
राम चरित मानस कवि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी।
सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥ १॥

अर्थ– शिवजी की कृपा से हृदय में सुमति उल्लसित हुई, त
रामचरित मानस का तुलसी कवि हुआ। मति के अनुसार इसे (मान
को) मनोहर बना रहा है, सो हे सज्जनों! सुन्दर चित्त से सुनक
सुधार लो।

सम्भु प्रसाद–शम्भु के प्रसाद से अव्याहतगति होती है, यथा
'अव्याहतगति सम्भु प्रसादा।' श्री गोस्वामीजी को बड़ी चिन्ता थी कि
बिना निर्मल मति के कविता बनती नहीं, और मुझमें मतिबल अति
अल्प है, यथा—'सो न होइ बिनु विमल मति' 'मोहि मति बल अति
थोर।' इसीलिये सबसे विनय किया, कवि समाज का निहोरा किया
भगवती जनकनन्दनी (गायत्री रूपा) को मनाया, सो सबकी कृपा से
शंकर भगवान् अनुकूल हुए, यथा—

"सो महेस मोपर अनुकूला।
करिहिं कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि सिवा-सिव पाइ पसाऊ।
बरनौं रामचरित चित चाऊ॥
सपनेहुँ साँचेहु मोहिपर जौ हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होइ जो कहेउ कछु भाषा भनित प्रभाउ॥"

शम्भु के प्रसाद से बुद्धि की अव्याहत गति होती है, अर्थात् सात्विकी बुद्धि होती है। देवता प्रसन्न होकर सद्बुद्धि देते हैं, यथा—'ददामि बुद्धियोगं तम्'।

सुमति हिय हुलसी—भाव यह कि हृदय में मति ( बुद्धि ) का निवास है। मति दो प्रकार की होती है। एक सुमति और दूसरी कुमति। यथा—'सुमति कुमति सबके उर रहई। नाथ पुरान निगम अस कहई। जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना'। सुमति की अव्याहत गति होती है, वह प्रवृत्ति, निवृत्ति, कार्य, अकार्य्य, भय, अभय, बन्ध, मोक्ष को यथावत् जानती है, यथा—'प्रवृत्तिं च निवृत्तिञ्च कार्य्याकार्य्ये भयाभये। बन्धं मोक्षञ्च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी।' इसका उदाहरण यही मानस प्रसङ्ग है।

कुमति के दो भेद हैं—( १ ) राजसी और ( २ ) तामसी। राजसी में कार्य अकार्य्य, धर्म अधर्म का यथावत् ज्ञान नहीं होता, यथा—'देखि देव पुनि कहै निहोरी। मातु तोरि नहिं थोरेउ खोरी॥ बिसमय हरख रहित रघुराऊ। तुम जानहु रघुवीर प्रभाऊ॥ जीव कर्म बस दुख सुख भागी। जाइय अवध देव हित लागी।' और तामसी में उलटा ज्ञान होता है। तामस बुद्धि वाला अधर्म को ही धर्म मान बैठता है, सभी अर्थों को उलटा देखता है, यथा—'तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित जानहि रिपु प्रीता।' इसका उदाहरण अयोध्या-काण्ड में है।

यथा—"अस कहि कुमति भई उठि ठाढी ।
मानहु रोष तरंगिनि बाढी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई ।
भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ वर कूल कठिन हठ धारा ॥
भँवर कूवरी वचन प्रचारा ॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला ।
चली विपति वारिधि अनुकूला ॥"

शम्भु के प्रसाद से रजोगुण और तमोगुण को पराभूत करके सात्विकी बुद्धि उल्लसित हुई ।

राम चरित मानस—राम चरित अपार है, इसे संसार-निरत-चित्त तो किसी प्रकार से नहीं कह सकता । इसे कहने में शारदा शेष महेश विधि आगम निगम पुराण भी समर्थ नहीं हैं । यथा—

"कहँ रघुपति के चरित अपारा ।
कहँ मति मोरि निरत संसारा ॥
जो मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं ।
कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥
सारद सेष महेस विधि आगम निगम पुरान ।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरन्तर गान ॥"

इसके आदिकवि शङ्कर भगवान् हैं, यथा—'यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम् ।' सो सब कहने के बाद वे भी कहते हैं कि—

गिरिजा सुनहु विसद यह कथा ।
मैं सब कही मोरि मति यथा ॥
राम चरित सत कोटि अपारा ।
श्रुति सारदा न बरनै पारा ॥

राम अनंत अनंत गुनानी ।
जन्म कर्म अनंत नामानी ॥
जल सीकर महि रज गनि जाहीं ।
रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥

कवि तुलसी—उन्हीं शंकर के प्रसाद से ऐसे रामचरितमानस का तुलसी कवि हुआ । कारण यह कि सात्विकी बुद्धि हो गई । निर्मल मति होनेसे ही ऐसी सरल कविता बनती है कि जिसे सुनकर शत्रु स्वाभाविक वैर छोड़कर प्रशंसा करने लग जाता है । यथा—'सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरैं सुजान । सहज वैर बिसराइ रिपु, जो सुनि करइ बखान' । इसके बाद से गोस्वामी जी अपने को कवि लिखने लग गये, यथा—'बरनत रघुबर भरत वियोगू । सुनि कठोर कवि कहिहहिं लोगू । सीय बरनि जो उपमा देई । कुकवि कहाइ अजस को लेई ।' इत्यादि । नहीं तो ये ही महात्मा पहिले अपने को लिख आये हैं कि—

कवि न होहुँ नहिं बचन प्रवीनू ।
सकल कला सब विद्या हीनू ॥
आखर अरथ अलंकृत नाना ।
छंद प्रबंध अनेक विधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा ।
कवित दोष गुन विविध प्रकारा ॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे ।
सत्य कहहुं लिखि कागद कोरे ॥

करइ मनोहर—शब्द और अर्थ को कविता सरस्वती का देह माना गया है । रीति को अवयवसंस्थान, माधुर्य्यादि को गुण और दुःश्रवादि को दोष माना गया है, उपमादि को अलङ्कार कहा गया है,

और रस आत्मारूप से वर्णित है। श्री गोस्वामी जी का मत है कि इतना होने पर भी कविता सरस्वती को साड़ी चाहिये, जिसके बिना सब सुन्दरता, अलङ्कार तथा स्वयम् जीवन भी मिट्टी है। यथा—

भनित विचित्र सुकवि कृत जोऊ।
राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
विधुवदनी सब भाँति सँवारी।
सोह न बसन बिना बर नारी॥
सब गुन रहित कुकवि कृत बानी।
राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही।
मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥

बिना भगवन्नाम की साड़ी पहिनाये सरस्वती दर्शनीया नहीं होतीं गोस्वामी जी का अभिप्राय यह है कि मैं अपनी कविता का यथेष्ट शृङ्गार तो न कर सका, पर मैंने उसे साड़ी तो पहिना रक्खी है, अत मेरी कविता सरस्वती दर्शनीया हैं, मनोहर हैं।

मति अनुहारा—साहित्य के ग्रंथों में कहीं साड़ी पहिनाने की आवश्यकता नहीं समझी गई और न कहीं उसका उल्लेख है, और मेरी समझ में साड़ी की अनिवार्य्य आवश्यकता है। अन्य साहित्यसेवि यों के साथ ऐकमत्य न होने से मति अनुहारी कहा।

सुजन सुचित सुनि—भाव यह कि इसके श्रोता सुजन हैं, यथा —'सुनहु सकल सज्जन सब, खल करिहहिं उपहास'। उन्हींको इससे सुख मिलना है अतः वे लोग सुंदर चित्त से सुनें अर्थात् 'सुनहिं रहि मानी'। दुर्जन से नहीं कहते क्योंकि सुधारने के लिये प्रार्थना है और उपहास करने वाले सुधारने में असमर्थ होते हैं।

लेहु सुधारी—पहले तो मुझसे कविता सरस्वती का यथेष्ट शृंगार ही किया न हो सका और जो कुछ किया भी है, उसमें भी यदि चूक

हुई हो तो उसे सुधार लें। यहाँ सुधारने का यह अर्थ नहीं है कि पाठ बदल दें या क्षेपक जोड़ दें। ऐसा करने वाले तो बिगाड़ने वाले हैं, इनके लिये तो गोस्वामीजी ने पहरेदार मुकर्रर किया है, यथा—'जे गावहिं यह चरित संभारे। ते यहि ताल चतुर रखवारे'।

यहाँ सुधारने का यह तात्पर्य्य है कि दुख दोष दूर करके निर्मल यश दें, यथा—'काल सुभाउ कर्म बरिआईं। भलहु प्रकृति वस चुकइ भलाईं। सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि-दुख दोष विमल जस देहीं'। कारण यह है कि 'हेतु रहित जुग जग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी।' सरकार ने चूक सँभारा। यथा—

"अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी।
सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी॥
समुझि सोच मोहि अपडर अपने।
सो सुधि राम कीन्ह नहि सपने॥
सुनि अवलोकि सुचित चख चाही।
भगति मोरि मति स्वामि सराहीं॥"

श्री गोस्वामी जी कहते हैं, कि मैं सीताराम से साहिब का अपने मन से सेवक कहलाने लगा, और लोग भी कहने लगे। लौकिक राजा का भी कोई अपने मनसे पुलिस या तहसीलदार बन जाय, तो राजा बिना दण्ड दिये नहीं रहता, और मैं अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक का सेवक, अपने मन से, बिना सरकार की स्वीकृति पाये ही कहलाने लगा। इस पाप को सुनकर नरक ने नाक सिकोड़ा, कि तुलसीदास के लिये मेरे यहाँ स्थान नहीं है, इसके लिये कोई नया नरक बनाना चाहिये, पर मेरे सरकारने सपने में भी मेरे अपराध को न गिना, उलटा सराहन करने लगे कि तुलसीदास की भक्ति के कारण मति भरी हो गई है, इससे हमारा सेवक बना फिरता है।

इसी भाँति 'हे सुजन ! आप लोग सरकार के सेवक हैं, आप लोग भी इसी भाँति मेरी चूक को सुधार लें । आप भी कह सकते हैं कि भक्ति के कारण भोरी मति हो जाने से तुलसीदास ने ऐसा लिख दिया।

"सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।
वेद पुरान उदधि घन साधू ॥
बरखहिं राम सुजस बरबारी।
मधुर मनोहर मङ्गलकारी ॥ १ ॥

अर्थ—सुमति भूमि में हृदय गहरा स्थल है, वेद पुराण समुद्र है, और साधु बादल हैं। राम सुयश रूपी श्रेष्ठ जल बरसाते हैं जो मधुर मनोहर और मङ्गल कारी होता है।

सुमति भूमि—जिस भांति भूमि चराचर की योनि है, उत्पत्ति स्थान है, उसी भांति सुमति भी गुणगण की योनि है, इसीलिये सुमति में भूमि का आरोप किया, यथा—

"सोक कनक लोचन मति छोनी।
हरी सकल गुनगन जग जोनी ॥
भरत विवेक वराह विशाला।
अनायास उधरयौ तेहि काला ॥

जिस भांति भूमि का उद्धार वाराह भगवान ने किया, उसी भांति सुमति का उद्धार शम्भुप्रसाद रूपी वाराह ने किया। भूमि को हिरण्याक्ष ने हरण किया था, यहाँ सुमति को संसार ने हरण किया था, यथा—"कहँ मति मोरि निरत संसारा।"

सुमति ही राम सुयश वरवारि की धारणोपयोगिनी है, यथा—

"राम चरित चिन्तामनि चारू।
संत सुमति तिय सुभग सिंगारू ॥"

कुमति का इसके धारण से उपयोग नहीं है, यथा—'प्रभुपद प्रीति न सामुझि नीकी। तिनहिं कथा सुनि लागहि फीकी' तथा—'गुरू मो

नित्य प्रबोध, दुखित देखि आचरन मम। मोहि उपजै अति क्रोध, दंभिहिं नीति कि भावई।'

थल हृदय अगाधू—भाव यह कि गहरे स्थान में ही जल इकट्ठा हो सकता है। यहाँ हृदय शब्द शुद्ध मन का उपलक्षण है, क्योंकि जिस हृदय को ऊपर सुमति का आधार कह आये हैं, यथा—'संभुप्रसाद सुमति हिय हुलसी' उसी को सुमति का आधेय या सुमति का एकदेश नहीं कह सकते, और आगे चलकर इसके लिये स्पष्ट मन शब्द का प्रयोग भी किया है, यथा—'भरेउ सुमानस सुथिर थिराना।' सुमति भूमिका वाला मन गहरा होता ही है, यथा—'कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाव जानत मति धीरा' तथा—'कृपासिंधु सिव परम अगाधा।' कुमति-भूमिका वाले मन में रामयश के लिये गहराई नहीं रहती, यथा—'रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस विशेष जाना तिन नाहीं।'

वेदपुराणउदधि—वेद चार हैं, चार उपवेद हैं, अठारह पुराण हैं, उतने ही उपपुराण हैं। इनकी उपमा समुद्र से दी गई है। सो समुद्र भी चार ही हैं, छोटे समुद्र, खाड़ियाँ, पचासों होंगी। समुद्र ही जलराशि है पानी का खजाना है। समुद्र का ही पानी, नदी, नद, झील, तालाब, झरना, कुआँ रूपसे संसार को मिलता है, उस पानी का एक बूँद भी नष्ट नहीं हो सकता, और संसार भर का पानी समुद्र में गिरता है। विचित्र व्यापार चल रहा है। तौल कर पानी इस भूमण्डल को मिला है। वह सदा उतना ही बना रहता है। तमाम संसार का काम उसी से चलता है, फिर भी उसमें से न एक बूँद अधिक हो सके न कम। पृथ्वी के भीतर, बाहर, मीठा, खारा, निर्मल मलीन जितना जल है, सो सब समुद्र का ही जल है।

इस भांति जो कुछ ज्ञान इस संसार में है, उसका खजाना वेद पुराण है। वेद पुराण से ही ज्ञान संसार में फैला है। चाहे जिस रूप से जिस देश में, जिस प्रकार का ज्ञान है, सब का मूल वेद पुराण है।

वेद पुराण के ज्ञान में से न एक बिन्दु घट सकता है, न बढ़ सकता है। चाहे रासायनिक, चाहे वैद्युत, चाहे इस लोक का, चाहे परलोक का, सब का मूल वेद पुराण हैं।

घन साधू—समुद के जल को संसार भर में वितरण करने के लिये एक पारमेश्वरी जल-कल है, जिसे बादल कहते हैं। ये बादल ही जगत् को आप्यायित करते हैं, ये ही जगत् के जीवनदाता हैं। समुद्र से जल लेकर संसार भर में पहुँचाना इनका काम है। जो जल नद नदी में बह रहा है, जो तालाब, झील और कूओं में एकत्रित है, वह सब इन्हींका जूठा है।

इसी भाँति वेद पुराण के ज्ञान को, जहाँ तहाँ सारे संसार में फैलानेवाले साधु हैं। जो कुछ ज्ञान-विज्ञान संसार में दिखाई पड़ता है, सो सब साधुओं का दिया हुआ है, और सब वेद पुराणों से निकला है। आकाश से गिरता हुआ जल, पाताल से खोदकर निकाला हुआ जल, समुद्र से ही लाया गया है, यह बात आपाततः समझ में नहीं आती। इसी भाँति यूरप अमेरिका का आविष्कृत ज्ञान भी परम्परया वेद से ही निकाला है यह बात भी एकाएक मन में नहीं आती, पर वस्तुस्थिति ऐसी ही है।

राम सुजस बरवारि—समुद्र में काम के लायक जल नहीं होता न वह पीने योग्य होता है। न खेत सींचने योग्य होता है इसलिये उसके जल को बरवारि नहीं कहा। वेद पुराण की उपमा समुद्र से दी है क्योंकि वे अखिल-धर्म के मूल होने से काम्य-धर्म के भी प्रतिपादक हैं, उनमें अर्थ काम का भी यथेष्ट मात्रा में प्रतिपादन है, अतः वे सबके काम के न रह गये। साधारण श्रेणी के लोग तो काम्य-धर्म को ही मुख्य मान बैठेंगे। उनमें जो त्याग की महिमा कही गई है, उसे मुख्य न मानेंगे, और यह अर्थ लगावेंगे, कि यह त्याग, कर्म के अनधिकारी अन्ध पंगु के लिये है, और सिद्धान्त यह है कि —

सो सब करम धरम जरि जाऊ।
जहँ न राम-पद-पंकज भाऊ॥
जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू।
जहँ नहिं राम-प्रेम परधानू॥

सो वेद पुराण से जगत् को लाभ साधु द्वारा ही हो सकता है। जिस भाँति मेघ में ही यह सामर्थ्य है कि, समुद्र के खारे जल में से लवण-भाग त्याग करके मीठा जल निकाल लेते हैं, उसी भाँति साधु. में ही यह सामर्थ्य है कि वेद पुराण में से काम्य-धर्म अर्थादि को छोड़-कर राम सुयश रूपी शुद्ध धर्म ग्रहण कर लें। अतः राम सुयश को मेघ के जल की भाँति शुद्ध जल माना है। यह सबके काम का होता है, यथा—

जीवन मुक्त महा मुनि जेऊ।
हरि गुन सुनहिं निरन्तर तेऊ॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी।
सादर सुनहिं परम अधिकारी॥
भवसागर चहँ पार जो पावा।
राम-कथा तेहि कहँ दृढ़ नावा॥
विषयिन कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा।
श्रवन-सुखद अरु मन-अभिरामा॥
ते जड़ चेतन आतम घाती।
जिनहिं न रघुपति-कथा सोहाती॥

बरखहिं—समुद्र का जल उन्हीं को सुलभ है, जो उसके तीर-निवासी हैं, अधिक लोग तो ऐसे ही हैं, जिन्हें जन्म भर समुद्र का दर्शन भी नहीं हुआ, इस भाँति अधिकारी का ही वेद पुराण में प्रवेश है, शेष जगत् ने तो वेद पुराण का नाम मात्र सुन रक्खा है, और मेघ तो ऐसी वर्षा करते हैं कि प्रान्त का प्रान्त जलमय हो जाता

है, इसी भांति साधु लोग रामयश की ऐसी वर्षा करते हैं कि देश का देश राम यश से प्लावित हो उठता है, यथा—

मुद मंगलमय सन्त समाजू।
ज्यौं जग जंगम तीरथ राजू॥
राम-भगति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म-विचार प्रचारा॥
विधि-निषेधमय कलिमल-हरनी।
कर्म-कथा रवि अंध निवरनी॥
हरिहर कथा विराजत बेनी।
सुनत सकल मुद-मंगल-देनी॥
वट विश्वास अचल निज धर्मा॥
तीरथ राज समाज सुकर्मा।
सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा॥
सेवत सादर समन कलेसा॥

यहाँ जंगम तीर्थराज कहकर उनका देश-देश में विचरण कहा। त्रिवेणी से उपमा देकर जल का माधुर्य्य कहा। 'सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा' कहकर मेघ की भांति सर्वोपकारी कहा—

मधुर मनोहर मङ्गलकारी— भाव यह कि समुद्र का जल खारा भयंकर और दोषयुक्त होता है। खारा, तथा—

लीलहिं लाँघहु जलनिधि खारा।

भयंकर, यथा—

संकुल उरग नक्रझख जाती।
अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥

दोषयुक्त, यथा—

तव रिपु-नारि रुदन जल धारा।
भरयो बहोरि भयउ तेहि खारा॥

कुछ विशेष अवसरों के व्यतिरिक्त समुद्र का जल स्पर्श निषिद्ध है, पर वर्षा का जल, जो समुद्र से ही वस्तुतः लिया हुआ है, सदा मधुर मनोहर और मंगलकारी होता है, इसी भांति वेद पुराण से सद्यःप्राप्त ज्ञान भी खारा, भयानक और दोषयुक्त सा होता है—

खारा सा—यथा—

प्रौढ भये मोहि पिता पढ़ावा।
समुझौं सुनौं गुनौं नहिं भावा॥

भयानक सा—यथा—

मेघनाद मख करै अपावन।
खल मायावी देव सतावन॥
जाइ कपिन देखा सो वैसा।
आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥

दोष युक्त सा—यथा—

श्रुति पुरान बहु कहे उपाई।
छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥

पर यही वेद-पुराण का ज्ञान साधु-मुखच्युत होने से मधुर मनोहर मङ्गलकारी हो जाता है—

मधुर, यथा—

श्रवनवंत अस को जग माहीं।
जिनहिं न रघुपति चरित सोहाहीं॥

मनोहर, यथा—

सावधान मन करि पुनि संकर।
लागे कहन कथा अति सुंदर॥

मङ्गलकारी, यथा—

मंगल-करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।

जाइ सुनहु तहँ हरिगुन भूरी।
होइहि मोह जनित भ्रम दूरा॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी।
सोइ स्वच्छता करै मलहानी॥
प्रेम भगति जो वरनि न जाई।
सोइ मधुरता सुसीतलताई॥ ३॥

अर्थ—जो सगुण लीला बखान कर कहते हैं, वही स्वच्छता मल का नाश करती है, और प्रेमाभक्ति जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता वही मिठास और तरावट है!

लीला सगुन—सगुण लीला कहने से ही अर्थापत्ति होती है कि निर्गुण लीला भी है। वस्तुतः निर्गुण· सगुण में कोई भेद नहीं है। शुद्ध ब्रह्म को निर्गुण, और माया-शबल ब्रह्म को सगुण कहते हैं। जैसे जल ही शीत के योग से पाला और बरफ हो जाता है, उसी भाँति निर्गुण ब्रह्म ही मायोपहित होने से सगुण ब्रह्म हो जाता है। सगुण ब्रह्म के भी सामान्यतः दो भेद माने जाते हैं; एक विश्वरूप और दूसरा लीलाविग्रह। विश्वरूप स्थविष्ठ ( अत्यन्त स्थूल ) रूप है, और लीला-विग्रह, इच्छामय होने से तदपेक्षया सूक्ष्म है, यथा—

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं पुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत-प्रेम-बस सगुन सो होई॥
जो गुन-रहित सगुन सो कैसे।
जल हिमि उपल बिलग नहिं जैसे॥

ब्रह्म सदा आप्तकाम है, चाहे वह निर्गुण रूप हो, चाहे सगुण-रूप हो, उसे किसी प्रकार का कोई प्रयोजन नहीं है, फिर भी दोनों रूप की लीलाएँ होती हैं। प्रयोजनान्तर-रहित कर्म को ही लीला कहते हैं।

निर्गुण ब्रह्म निरीह, निष्क्रिय है पर उसके सन्निधानमात्र से जड़ माया में क्रिया उत्पन्न होती है, और संसार का व्यापार चल पड़ता है, यही उसकी लीला है, यथा—

मुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया ।
पाइ जासु बल बिरचति माया ॥
एक रचइ जग गुन-बस जाके ।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके ॥

यही निर्गुण ब्रह्म की लीला है ।

सगुण ब्रह्म की लीला दूसरे प्रकार की है । जब जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब तब साधुओं की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिये प्रभु अवतीर्ण होकर लीला करते हैं,

जब जब होइ धरम कै हानी ।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा ।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा ॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह ।
राखहिं निज श्रुति सेतु ॥
जग विस्तारहिं विसद जस ।
राम जन्म कर हेतु ॥
यथा—मीन कमठ सूकर नरहरी ।
वामन परसु राम वपु भारी ॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो ।
नाना तनु धरि तुमहिं नसायो ॥
एहि विधि जन्म कर्म हरि केरे ।
सुन्दर सुखद चित्र घनेरे ॥

यहाँ राम अवतार की लीला कह रहे हैं, उसे ८४ प्रसङ्गों में वर्णन किया गया है। सम्भवतः चौरासी लाख योनियों से मुक्ति के लिये चौरासी प्रसङ्ग हैं। यही मूल श्रीरामचरितमानस है,

यथा—

(१) प्रथमहि अति अनुराग भवानी।
रामचरित सर कहेसि बखानी॥
(२) पुनि नारद कर मोह अपारा।
(३) कहेसि बहुरि रावन अवतारा॥
(४) प्रभु अवतार कथा पुनि गाई।
(५) पुनि सिसु चरित कहेसि मन लाई॥

दोहा— (६) बाल चरित कहि विविध विधि,
मन मह परम उछाह।
(७) रिषि आगमन कहेउ पुनि,
(८) श्रीरघुबीर विवाह॥

(९) बहुरि राम अभिषेक प्रसङ्गा।
(१०) पुनि नृप वचन राज रस भंगा॥
(११) पुर वासिन कर विरह विषादा।
(१२) कहेसि राम लछिमन संबादा॥
(१३) विपिन गवन केवट अनुरागा।
(१४) सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥
(१५) बालमीकि प्रभु मिलन बखाना।
(१६) चित्रकूट जिमि बसे भगवाना॥
(१७) सचिवागमन नगर (१८) नृप मरना।
(१९) भरतागमन प्रेम बहु बरना॥
(२०) करि नृप क्रिया संग पुरवासी।
(२१) भरत गये जहँ प्रभु सुख रासी।

(२२) पुनि रघुपति बहु विधि समुझाये ॥
(२३) लै पादुका अवध फिरि आये ।
(२४) भरत रहनि (२५) सुरपति सुत करनी ॥
(२६) प्रभु अरु अत्रि भेट पुनि बरनी ।

दोहा— (२७) कहि विराध बध,
(२८) जेहि विधि देह तजी सरभङ्ग ।
(२९) बरनि सुतीछन प्रीति पुनि,
(३०) प्रभु अगस्त सत सङ्ग ॥

(३१) कहि दण्डक बन पावनताई ।
(३२) गीध मैत्री पुनि तेहि गाई ॥
(३३) पुनि प्रभु पञ्चबटी कृतवासा ।
भंजी सकल मुनिन्ह कर त्रासा ॥
(३४) पुनि लछिमन उपदेस अनूपा ।
(३५) सूपनखा जिमि कीन्ह कुरूपा ॥
(३६) खरदूखन बध बहुरि बखाना ।
(३७) जिमि सब मरम दसानन जाना ॥
(३८) दसकंधर मारीच बतकही ।
जेहि विधि भई सो सब तेहि कही ॥
(३९) पुनि माया सीता कर हरना ।
(४०) श्रीरघुबीर विरह कछु बरना ।
(४१) पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही ॥
(४२) बधि कबंध सबरिहिं गति दीन्ही ।
(४३) बहुरि विरह बरनत रघुवीरा ॥
जेहि विधि गये सरोवर तीरा ॥

दोहा— (४४) प्रभु नारद संबाद कहि ।
(४५) मारुति मिलन प्रसङ्ग ॥

(४६) पुनि . सुग्रीव मिताई ।
(४७) वालि प्रान कर भङ्ग ॥
दोहा (४८) कपिहिं तिलक करि ।
(४९) प्रभु कृत सैल प्रवर्षन वास ॥
(५०) बरनत बरखा सरद रितु ।
(५१) रामरोख (५२) कपित्रास ॥
(५३) जेहि विधि कपिपति दूत पठाये ।
सीता खोज सकल दिसि धाये ॥
(५४) विवर प्रवेश कीन्ह जेहि भाँती ।
(५५) कपिन बहोरि मिला सम्पाती ॥
(५६) सुनि सब कथा समीर कुमारा ।
(५७) लाँघत भयउ पयोधि अपारा ॥
(५८) लङ्का कपि प्रवेस जिमि कीन्हा ।
(५९) पुनि सीतहिं धीरज जिमि दीन्हा ।
(६०) बन उजारि (६१) रावनहि प्रबोधी ॥
(६२) पुरदहि (६३) लाँघेउ बहुरि पयोधी ।
(६४) आये कपि सब जहँ रघुराई ॥
(६५) वैदेही कर कुशल सुनाई ।
(६६) सेन समेत जथा रघुवीरा ॥
उतरे जाइ वारि निधि तारा ।
(६७) मिला विभीषन जेहि विधि आई ।
(६८) सागर निग्रह कथा सुनाई ॥
दोहा—(६९) सेतु बाँधि कपिसेन जिमि,
उतरी सागर पार ।
(७०) गयउ बसीठी वीरवर,
जेहि विधि बालिकुमार ॥

( ७१ ) निसिचर निकर कीस लराई ,
बरनेसि विविध प्रकार ।
( ७२ ) कुम्भकरन ( ७३ ) घननाद ,
कर बल पौरुष सँहार ॥
( ७४ ) निसिचर निकर मरन विधि नाना ।
( ७५ ) रघुपति रावन समर बखाना ॥
( ७६ ) रावन वध (७७) मन्दोदरि सोका ।
( ७८ ) राज बिभिषन देव असोका ॥
( ७९ ) सीता रघुपति मिलन बहोरी ।
( ८० ) सुरन कीन्हि अस्तुति करजोरी ॥
( ८१ ) पुनि पुष्पक चढ़ि सेन समेता ।
अवध चले प्रभु कृपा निकेता ॥
( ८२ ) जेहि विधि राम नगर नियराये ।
वायस बिसद चरित सब गाये ॥
( ८३ ) कहेसि बहोरि राम अभिषेका ।
( ८४ ) पुर बरनन नृप नीति अनेका ॥

कथा समस्त भुसुण्डि बखानी ।
जो मै तुम सन कहा भवानी ॥

जोकहहिं बखानी—भाव यह कि निर्गुण लीला बखान कर नहीं कहते, क्योंकि उसी से संसार फैला हुआ है । कितना भी अध्यारोप किया जाय पर अन्त में उसका अपवाद ही करना है, अतः उसके विस्तार से कोई प्रयोजन नहीं है, यथा —

रजत सीप महं भास जिमि जथा भानुकर वारि ।
जदपि मृषा तिहु कालमहं भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥

एहि विधि जग हरि आश्रित रहई।
जदपि असत्य देत दुःख अहई॥
ज्यों सपने सिर काटै कोई।
जागे बिनु न दूर दुख होई॥

पर सगुण लीला विस्तार के साथ कही जाती है, क्योंकि वह लीला ही इसलिये की जाती है, कि उसके गान से लोग भवसागर के पार चले जायँ, यथा—सोइ जस गाइ गाइ भव तरहीं। कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं। भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा। जेहि कहत गावत सुनत समुझत परमपद नर पावई।

तापनीय श्रुति भी कहती है कि "धर्म मार्ग चरित्रेण ज्ञान मार्ग तु नामतः। स्वस्य ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्य्यं स्वस्य पूजनात्।' श्रीरामजी अपने चरित्र के द्वारा धर्म देते हैं, नाम के द्वारा ज्ञान देते हैं, अपने ध्यान के द्वारा वैराग्य, और पूजन के द्वारा ऐश्वर्य्य देते हैं। लीला वर्णन में नाम चरित्र और ध्यान तथा पूजन सभी आ जाता है। एवम् तीनों काण्डों ( कर्म, ज्ञान, उपासना ) का फल सुलभ होता है अतः सगुण लीला वर्णन विस्तार से करना ही प्राप्त है; अतः मुनियों ने कीर्त्ति का ही गान किया है, यथा—

हरि अनंत हरिकथा अनंता।
कहहिं सुनहिं बहु विधि श्रुति संता॥

फलतः उपर्य्युक्त चौरासी प्रसङ्ग का विस्तारपूर्वक वर्णन ही यहाँ पर सगुण लीला का बखान है। भुसुण्डिजी सत्ताइस कल्प तक कथा ही कहते रहे। इसीलिये 'रामायन सत कोटि अपारा' कहा गया है।

गावत संतत सम्भु भवानी।
अरु घट सम्भव मुनि विज्ञानी॥
व्यास आदि कविवर्य्य बखानी।

कागभुसुण्डि गरुड़ के हीकी ॥
आरती श्री रामायण जी की ॥

जिन चार कल्प के रामवतारों की कथाएँ गोस्वामी जी ने कहा, वे कम से कम सत्ताइस कल्पों के पहिले की हैं। वाल्मीकीय रामायण में इस कल्प के रामावतार की कथा है, अतः श्रीरामचरितमानस और वाल्मीकीय में कथा के पूर्ण साम्य की आशा ही व्यर्थ है।

सोऽस्वच्छता—रामयश रूपी जल में सगुण लीला का बखान है। स्वच्छता ज़ल की शोभा निर्मल होने में ही है, इसी भांति रामयश की शोभा सगुण लीला के बखान में है। भगवान् के जन्म कर्म दिव्य हैं। जिस भांति जीव का जन्म कर्म होता है, उस भाँति भगवान् का जन्म कर्म नहीं होता। जीव अविद्या के वश हो कर्म-फल भोग के लिये जन्म पाता है, और जन्म लेकर फिर कर्म करता है, जो उसके अनागत जन्म का कारण होता है, इसी भांति कर्म जाल में फँसा हुआ दुःख पाता है। भगवान् का कर्म, विपाक ( फल ) और आशय ( संस्कार ) से कोई सम्पर्क नहीं रहता, यथा—

कर्म सुभासुभ तुमहि न बाधा।

वह स्वतन्त्र है, भक्तानुग्रह के लिये शरीर धारण करता है। उसकी शरीर भी भौतिक नहीं होती, यथा—

इच्छा मय नरवेष सँवारे।
होइहौं प्रकट निकेत तुम्हारे ॥

भगवान् के कर्म भी अलौकिक होते हैं, और उनसे वह लिप्त नहीं होता। वह जैसा काछ काछता है, वैसी नांच नाचता है। वह नट की भांति इस संसार के रङ्ग मञ्च में प्रवेश करता है, और जो कुछ करता है, सो लोकोपकारार्थ अभिनय की भांति करता है, यथा—

यथा अनेक भेष धरि नृत्य करइ नट कोई।
जोइ जोइ भाव दिखावै आपु न होइ न सोइ ॥

सो जिस कथा में ऐसे दिव्य कर्म का निरूपण हो, उसे दिव्य न कहना ही अनुचित है, और जो दिव्य है वही स्वच्छ है, वही मनोहर है, अतः उपर्युक्त ८४ प्रसङ्गों का बखान पूर्वक कथन की उपमा स्वच्छता से दी गई।

ऊपर कह आये हैं कि—

बरखहि राम सुजस बरबारी।
मधुर मनोहर मङ्गल कारी॥

सो मनोहरता का स्पष्टीकरण इस अर्धाली में है, शेष दो का स्पष्टीकरण अगली अर्धालियों में किया गया है।

करै मल हानी— स्वच्छ जलही मलको दूर कर सकता है, नहीं तो 'मलकी जाय मलहि के धोये' जब वर्षा होती है तो संसार का मल दूर हो जाता है, पर्वत, वृक्ष, पृथ्वी सब धुल जाते हैं, इसी भांति जब रामयश की वर्षा होती है तो सगुण लीला के बखान से अभ्यन्तर मल दूर हो जाता है।

सगुण लीला के बखान से भगवान् के गुणों का प्रभाव श्रोताओं के हृदयों पर पड़ता है, अतः उनका आभ्यन्तर मल नष्ट होता है। इस बात को सभी श्रोताओं ने स्वीकार किया है, यथा—

गरुड़ वाक्य—गयेउ मोर सन्देह,
सुनेउ सकल रघुपति चरित।
उमा वाक्य—तुम्हारी कृपा कृपायतन,
अब कृतकृत्य न मोह॥
भरद्वाज वाक्य—जैसे मिटै मोह भ्रम भारी।
कहहु सो कथा नाथ विस्तारी॥
कवि वाक्य—रघुवंश भूषन चरित यह नर,
कहहिं सुनहिं जे गावहीं।

कलि मल मनो मल धोइ बिनु
श्रम राम धाम सिधावहीं ॥

अथवा वर्षा से स्थूलमल नष्ट होता है, पर सगुणलीला की वर्षा से सूक्ष्ममल नष्ट होता है। सूक्ष्ममल जल्दी नहीं छूटता। सूक्ष्ममल का वर्णन कवि ने विनयपित्रका में किया है, यथा—

मोह जनित मल लागत विविध विधि,
कोटिउ जतन न जाई।
नयन मलिन पर नारि निरखि,
मन मलिन विषय सँग लागे ॥
हृदय मलिन वासना मान मद,
जीव सहज सुख त्यागे।
पर निंदा सुनि श्रवन मलिन भे,
वचन दोष पर गाये ॥
सब प्रकार मल भार लाग,
निज नाथ चरन बिसराये।

सो सगुणलीला के बखान से ये सब सूक्ष्म मल छूट जाते हैं; यथा—

"मन क्रम वचन जनित अघ जाई।
सुनहिं जो कथा श्रवन मन लाई ॥"

प्रेम भक्ति—राम भक्ति के आनन्द में लीन रहना, और किसी प्रकार की कामना न रखना ही, प्रेमा भक्ति कहलाती है, साधक भेद से इस भक्तिका चौदह भेद ग्रन्थकार ने माना है। भक्ति, भक्त, और भगवान् का निरपेक्ष निरूपण नहीं हो सकता। अतः भगवद् यश में भक्ति और भक्तका वर्णन ओत प्रोत है। सो सातो काण्ड के पूर्वार्ध, और उत्तरार्ध में, एक एक प्रकार के भक्तों का वर्णन है। इस प्रकार

से सम्पूर्ण ग्रन्थ में चौदह प्रकार के भक्तों का वर्णन पाया जाता है। वाल्मीकि प्रभुमिलनप्रसङ्ग में इसकी कुञ्जी है।

[ १ ] बालकाण्ड के पूर्वार्ध में रामचरित्र के मुख्य श्रोता भरद्वाज और उमा प्रथम प्रकार के भक्त हैं, यथा—

"जाके श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे।
तिनके हिय तुम कहँ गृह रूरे॥"

भरद्वाज की, शम्भु उमा चरित सुन कर, कथा पर बड़ी लालसा बढ़ी, और कथा श्रवण में ऐसे लीन हुए कि कहीं कोई प्रश्न भी नहीं पूछा। याज्ञवल्क्य जी बार बार सम्बोधन करके सावधान करते थे, यथा—

"भरद्वाज सुनु जाहि पर होंहि विधाता वाम। सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी" इत्यादि, पर मुनि जी की वृत्ति जैसी की तैसी रह गई। अन्ततः रावण जन्म कहने के बाद उन्होंने सम्बोधन करना बन्द कर दिया। 'काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयेउ निसाचर सहित समाजा'। यही याज्ञवल्क्य जी का अन्तिम सम्बोधन है। ग्रन्थ की समाप्ति में न तो भरद्वाज जी का कृतज्ञता-प्रकाश है, न याज्ञवल्क्य जी की विदाई है। इससे यह सिद्ध हुआ कि दोनों महात्मा यावज्जीवन कथा कहते सुनते रह गये, तृप्ति न हुई।

उमा की भी तृप्ति कथा से न हुई, स्वयम् कहती हैं।

दोहा—"नाथ तवानन ससि स्रवत, कथासुधा रघुवीर।
श्रवन पुटन मन पान करि, नहिं अघात मतिधीर॥"

अतः रामचरितमानस के मुख्य दोनों श्रोता प्रथम प्रकार के भक्त हैं।

( २ ) बाल काण्ड के उत्तरार्ध में स्वायम्भूमनु सतरूपा, महाराज दशरथ, महाराज जनक, विदेहराजसमाज ये सब दूसरे प्रकार के भक्त हैं। दूसरे प्रकार के भक्त के विषय में कहा है—

लोचन चातक जिन करि राखे।
रहहिं दरस जलधर अभिलाखे॥
निदरहिं सरित सिंधु बरवारी।
रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥

मनु सतरूपा ने एक बार दर्शन पाने के लिये घोर तप किया।

"विधिहरिहर तप देखि अपारा।
मनु समीप आये बहु बारा॥
मागहु बर बहु भांति लोभाये।
परम धीर नहिं चलहिं चलाये"॥

यह उनका सरित सिंधु सर के प्रति निरादर है। महाराज दशरथ के लिये प्रख्यात है कि—

'जियत राम विधु बदन निहारा।
राम विरह करि मरन सँवारा'॥

जनकराज स्वयम् कहते हैं—

'इनहि देखि मन अति अनुरागा।
बरवस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा'॥

पुरवासी कहते हैं—

'निज निज रूप मोहिनी डारी।
कीन्हें स्ववस सकल नर नारी॥
सखि हमरे आरति अति ताते।
कबहुँ कि ये आवहिं येहि नाते॥'

इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तरार्ध ऐसे ही भक्तों की प्रेमकथा से भरा है।

( ३ ) अयोध्याकाण्ड के पूर्वार्ध में अयोध्यावासी तीसरे प्रकार के भक्त हैं, इनके विषय में कहा है,

दोहा—"जस तुम्हार मानस विमल,
हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुनगन चुनहि,
राम बसहु हिय तासु" ॥

अवधवासियों में दिन-रात रामजी के रूप-गुण-शील-स्वभाव की चरचा रहती है। महाराज चक्रवर्त्ती को दूतों द्वारा सब समाचार पहुँचा करता है, यथा—

"रामरूप गुन सील सुभाऊ।
प्रमोदित होइ देखि सुनि राऊ ॥

अतः गुरूजी से कहते हैं—

सेवक सचिव सकल पुरवासी।
जे हमरे अरि मित्र उदासी ॥
सबहिं राम प्रिय जेहि विधि मोही।"

इस बात को बहुत स्पष्ट उत्तरकाण्ड में किया है, यथा—

"जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं।
बैठि परस्पर इहै सिखावहि ॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि।
सोभा शील रूप गुन धामहिं ॥
जलज विलोचन स्यामल गातहिं।
पलक नयन इव सेवक त्रातहिं ॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहिं।
संत कंज वन रवि रन धीरहिं ॥
काल कराल व्याल खगराजहिं।
नमत राम अकाम ममता जहिं ॥

लोभ मोह मृग यूथ किरातहिं।
मनसिज करि हरि जन सुखदातहिं॥
संसय शोक निबिड़ तम भानुहिं।
दनुज गहन घन दहन कृसानुहिं॥
जनकसुता समेत रघुवीरहिं।"

इत्यादि—

उत्तरार्ध में चौथे प्रकार के भक्त भरतजी हैं। इस प्रकार के भक्त के विषय में कहते हैं—

(क) प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुवासा।
सादर जासु लहइ नित नासा॥
(ख) तुमहि निवेदित भोजन करहीं।
तव प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
(ग) सीस नवहिं सुरगुरु द्विज देखी।
प्रीति सहित करि विनय बिसेखी॥
(घ) कर नित करहिं राम पद पूजा।
राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥
(ङ) चरन राम तीरथ चलि जाहीं।
राम बसहु तिनके उरमाहीं॥

भरतजी में ये पाँचों लक्षण घटते हैं। यथा—

(क) "तेहि पुरवसहिं भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

(ख) जात पयादे खात फल,
पिता दीन्ह तजि राज।
जात मनावन रघुवरहिं,
भरत सरिस को आज॥

(ग) "करि प्रनाम पूछहिं जेहि तेही।
कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा॥
(घ) नित पूजहिं प्रभु पाँवरी,
प्रीति न हृदय समात।
(ङ) चले राम वन अटन पयादे॥

(५) आरण्य काण्ड के पूर्वार्ध में ऋषि लोग पाँचवें प्रकार के भक्त हैं। पाँचरे प्रकार का वर्णन इस प्रकार है—

(क) "मंत्रराज निज जपहिं तुम्हारा।
(ख) पूजहिं तुमहि सहित परिवारा॥
(ग) तरपन होम करहिं विधि नाना।
विप्र जेवाइ देहिं बहु दाना॥
(घ) तुमसे अधिक गुरुहिं जिय जानी।
सकल भाय सेवहिं सनमानी॥
(ङ) सब कर माँगहि एक फल,
राम चरन रति होउ।
तिनके मन मंदिर बसहु,
सिय रघुनन्दन दोउ॥

ऋषियों में ये पाँचों लक्षण घटते हैं, यथा—

(क) राम अनुज समेत वैदेही।
निसिदिन देव जपत हहु जेही॥"
जे राम मंत्र जपेत संत अनंत मुनिजन रंजनं
(ख) भजे सशक्ति सानुजं।
सचीपतिं प्रियानुजं॥
दिव्यवसन भूषन पहिराये।
जे नित नूतन अमल सुहाये॥

(ग) करहिं विप्र होम मख सेवा।

तर्पण होम, दान, ब्राह्मण भोजन तो ब्राह्मणों का नित्य कर्म है।

(घ) "अब प्रभु संग जाहु गुरु पाहीं।
तुम कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥

(ङ) जोग जज्ञ जप तप व्रत कीन्हा।
प्रभु कहँ देइ भक्ति वर लीन्हा॥"

(६) आरण्य के उत्तरार्ध में छठे प्रकार के भक्त नारदजी हैं। छठे प्रकार का निरूपण निम्नोक्त है—

काम कोह मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिनके कपट दंभ नहिं माया।
तिन्हके हृदय बसहु रघुराया॥

काम न यथा—

काम कला कछु मुनिहि न व्यापी।

क्रोध न, यथा—

भयउ न नारद मन कछु रोषा।

मदमान न—

मृषा होउ मम भाष कृपाला।

न मोहा—

साचेउ इनके मोह न माया।

लोभ न—

राम सकल नामन ते अधिका।
होहु नाथ अघ खग गन बधिका॥

वरदान में कोई अपने लाभ की बात नहीं माँगी।

छोभ न—

मुनि गति देखि सुरेस डेरान।

राग न—

उदासीन धन धामन जाया।

कपट नहीं—

तव विवाह मैं चाहौं कीन्हा।
प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥

माया नहीं—

साँचौं इनके मोह न माया।

( ७ ) किष्किन्धा के पूर्वार्ध में सातवें प्रकार के भक्त सुग्रीव जी हैं। सातवें प्रकार के लिये लिखा है—

( क ) सबके प्रिय ( ख ) सबके हितकारी।
( ग ) दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।
( घ ) कहहिं सत्य प्रिय बचन विचारी।
( ङ ) जागत सोवत सरन तुम्हारी।
( च ) तुम्हहि छाडि गति दूसरि नाहीं।
राम बसहु तिनके मन माहीं॥

सुग्रीवजी में ये सब गुण हैं।

यथा—

( क ) दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं।
( ख ) बालि परम हित जासु प्रसादा।
मिलेउ राम तुम समन विषादा॥
( ग ) सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं।
मायाकृत परमारथ नाहीं॥
( घ ) विषय वश्य सुर नर मुनि स्वामी।
मैं पामर पशु कपि अति कामी॥
( ङ ) सो सुग्रीव दास तव अहई।

(च) तुम हनुमंत सङ्ग लै तारा।
करि विनती समुझाउ कुमारा॥

(८) किष्किन्धा काण्ड के उत्तरार्द्ध में आठवें प्रकार के भक्त, चौदहो सुभट हैं, जो दक्षिण भेजे गये थे। आठवें प्रकार का लक्षण है।

(क) जननी सम जानहिं पर नारी।
(ख) धन पराव विषतें विष भारी।
(ग) जे हरषहिं पर संपति देखी।
(घ) दुखित होहिं पर विपति विशेषी।
(ङ) जिनहिं राम तुम प्रान पियारे।
तिनके मन सुभ सदन तुम्हारे॥

चौदहों सुभटों में ये सब बातें पाई जाती हैं।

क, यथा—

मन्दिर एक रुचिर तँह, बैठि नारि तप पुंज।
दूर तें ताहि सबन्हि सिर नावा।

ख, यथा—

तेहि तब कहा करहु जलपाना।
खाहु सुरस सुन्दर फल नाना॥

ग, यथा—

धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।

घ, यथा—

अस कहि लवन-सिंधु तट जाई।
बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥

ङ, यथा—

रामकाज लवलीन मन, बिसरा तनकर छोह।

(९) सुन्दरकाण्ड के पूर्वार्द्ध में नवें प्रकार के भक्त हनुमानजी हैं। नवें प्रकार के विषय में लिखा है—

स्वामि, सखा, पितु, मातु, गुरु,
जिनके सब तुम तात।
मन-मन्दिर तिनके बसहु,
सीय सहित दोउ भ्रात॥

स्वामी, यथा---

रामदूत मैं मातु जानकी।

सखा, यथा—

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे।

पितु मातु, यथा—

सेवक सुत पति मातु भरोसे।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।

गुरु, यथा—

सो अनन्य जाके असि, मति न टरै हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत॥

(१०) सुंदरकाण्ड के उत्तरार्ध में दशवें प्रकार के भक्त विभीषण जी हैं। दशवें प्रकार का वर्णन है।

(क) अवगुन तजि सबके गुन गहहीं।
(ख) विप्र धेनुं हित सङ्कट सहहीं।
(ग) नीति निपुन जिनकै जगलीका।
घर तुम्हार तिनकर मनु नीका॥

विभीषणजी में ये तीनों गुण पाये जाते हैं,

क, यथा—

जौं कुशल पूछेहु मोहि बाता।
मति अनुरूप कहौं हित ताता॥

ख, यथा—

विप्र-रूप धरि बचन सुनाये।
सुनत विभीषन उठि तहँ आये ॥

ग, यथा—

मैं जानहु तुम्हारि सब रीती।
अति नय निपुन न भाव न नीती ॥

( ११ ) लंकाकाण्ड के पूर्वार्द्ध में ग्यारहवें प्रकार के भक्त समुद्र जी हैं। ग्यारहवाँ प्रकार इस भाँति कहा गया है कि—

( क ) गुन तुम्हार समझइ निज दोषा।
( ख ) जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।
( ग ) राम भगत प्रिय लागहिं जेही।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही।

क, यथा—

प्रभु भल कीन्ह मोहिं सिख दीन्ही।

ख, यथा—

प्रभु प्रताप मैं जाव सुखाई।
उतरिहि कटक न मोरि बड़ाई ॥

ग, यथा—

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी।
तैं मैनाक होहि श्रमहारी ॥

( १२ ) लङ्काकाण्ड के उत्तरार्द्ध में बारहवें प्रकार के भक्त वानर लोग हैं। बारहवें प्रकार का वर्णन है—

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई।
प्रिय परिवार सदनु सुखदाई ॥
सब तजि तुमहिं रहइ उर लाई।
तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥

यथा—

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे ।
परे भूमि निसचरन्हि जे मारे ॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना ।
सकल जिआउ सुरेस सुजाना ॥

अथवा—

जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा ।
हरखे देव विलम्ब न कीन्हा ॥
वनचर-देह धरी छिति माहीं ।
अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ॥
गिरि तरु नख आयुध सब वीरा ।
हरि मारग चितवहिं मति धीरा ॥

देवता लोग 'जाति पाँति धन धर्म बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥' छोड़कर सरकार के लिये वानर बने, और रणांगण में प्राण त्याग किया ।

( १३ ) तेरहवें प्रकार के भक्त उत्तरकाण्ड के पूर्वार्द्ध में सनकादिक हैं । तेरहवाँ प्रकार है—

( क ) सरग नरक अपवर्ग समाना ।
जहँ तह देख धरे धनुबाना ॥
( ख ) करम वचन मन राउर चेरा ।
राम करहु तेहि के उर डेरा ॥

ये दोनों गुण सनकादिक में हैं ।

क, यथा—

समदरसी मुनि विगत विभेदा ।

ख, यथा—

आसा वसन व्यसन यह तिनहीं।
रघुपति-चरित होइ तँह सुनहीं॥

( १४ )—चौदहवें प्रकार के भक्त उत्तरकांण्ड के उत्तरार्द्ध में भुसुण्डि जी हैं। चौदहवें प्रकार का वर्णन—

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु,
तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन,
सो राउर निज गेह॥

यथा—

मन तें सकल वासना भागी।
केवल राम-चरन लय लागी॥

इन भक्तों के भजन-प्रकार में भेद है, अतः भक्ति के चौदह भेद माने गये। सभी भक्त इन चौदह में से किसी एक या एकाधिक के अनुयायी हैं। इन्हीं भक्तों के प्रीत्यर्थ रामजी शरीर धारण करते हैं, और उनकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं। वस्तुतः भगवान् की भक्तों के साथ क्रीड़ा ही सगुण लीला है। सगुण लीला और प्रेमाभक्ति उसी भाँति रामयश से पृथक् नहीं की जा सकती, जिस भाँति वर्षा के जलसे स्वच्छता और माधुर्य्य पृथक् नहीं किये जा सकते।

जो बरनि न जाई—प्रेमाभक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि भक्त का मन प्रेम से ऐसा भर जाता है कि उसका काम बन्द हो जाता है। वह संकल्प विकल्प करने में नितान्त असमर्थ हो जाता है, यथा—

'कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूछा।
प्रेम भरा मन निजगति छूछा।'

उस दशा में उसे अन्तःकरण-विस्मरण सा हो जाता है, उस आनन्द का वही अनुभव करता है, पर कह नहीं सकता। अतः प्रेमाभक्ति अवर्णनीय है, यथा—

परम प्रेम पूरन दोउ भाई।
मन बुधि चित्त अहमिति बिसराई॥
कहहु सुप्रेमु प्रकट को करई।
केहि छाया कवि मति अनुसरई॥

अतः जहाँ जहाँ कवि ने प्रेमदशा वर्णन में अपनी असमर्थता दिखलाई वहाँ वहाँ प्रेमाभक्ति का आविर्भाव समझना चाहिये। यथा –

सजल नयन तन पुलक निज,
इष्टदेव पहिचानि।
परेउ दण्ड जिमि धरनि-तल,
दशा न जाइ बखानि॥

निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी।
कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।
सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
प्रभुकर-पंकज कपि कै सीसा।
सुमिरि सो दशा मगन गौरीसा॥

बूझत कृपा निधि कुसल भरतहि बचन बेगिन आवई। सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई। इत्यादि।

सोइ मधुरता— 'मीठ कहा कवि कहइं जाहि जो भावइ'। जो जिसे अच्छा लगे वही उसके लिये मीठा है। श्रीरामयश में प्रेमाभक्ति ही मिठास है, यह सभी को अच्छी लगती है। पित्तदोष से दूषित जिह्वा को

चीनी भी तीती लगती है, फिर भी चीनी के मीठे होने में सन्देह नहीं किया जा सकता, इसी भाँति आत्मघाती पुरुष को प्रेमाभक्ति में आनन्द न आवे तब भी प्रेमाभक्ति की मिठास में सन्देह के लिये स्थल नहीं है, यथा—

ते जड़ जीव निजात्मक घाती।
जिनहि न रघुपति कथा सोहाती ॥

श्री राम-कथा में जो मिठास है, सो प्रेमाभक्ति को मिठास है। सन्त लोग जब वेदरूपी समुद्र को ज्ञानरूपी मन्दर से मन्थन करते हैं, तब रामकथारूपी अमृत उत्पन्न होता है, प्रेमाभक्ति उसी कथामृत की मिठास है, यथा—

ब्रह्म पयोनिधि मन्दर ज्ञान सन्त सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहि ॥

भक्ति-मिठास के उत्कर्ष से ही जहाँ तहाँ रामकथा को अमृत कहा गया है, यथा

श्रवनामृत जेहि कथा सुहाई।
कही सो प्रकट होत किन भाई ॥

नाथ तवानन ससि श्रवत कथासुधा रघुवीर। श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहि अघात मतिधीर। सोइ वसुधातल सुधातरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअङ्गिनि

जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहि तजि ध्यान। जे हरि कथा न करहिं रति तिन्हके हिय पाषान॥ मुनि गुन गान समाधि बिसारी। सारद सुनहि समाधि अधिकारी

सुशीतलताई—भाव यह कि जीव और संसार में तप्य तापक भाव सम्बन्ध है। जीव को संसार में दुख मिलता है। सुख तो भूमा में है, अल्प में सुख नहीं है, अतः विचारशील के लिये तो संसार दुःखरूप ही है यथा—काम क्रोध मद लोभरत गृहासक्त दुखरूप।

दुःखद होने से संसार तापक है, और दुःख पाने से जीव, तप्य है। ताप को दुःख और सीतलता को सुख माना गया है। कहा भी है कि 'सुख सीरो दुख तातो'। रामसुयश में प्रेमाभक्ति मिठास और तरावट है, अर्थात राम सुयश सुनने में भी प्रिय लगता है, और साथ ही साथ दुख का भी नाश करता है, यथा—

रामचंद्र गुन वरनै लागा।
सुनतही सीता कर दुख भागा॥

तथा—राम चरित मानस एहि नामा।
सुनत श्रवन पाइय विश्रामा॥
मन करि विषय अनल बन जरई!
होय सुखी नौ एहि सर परई॥

जल यदि अति ठण्ढा हो जावे तो दुखद हो जाता है, अतः सुशीतलताई कहा। सुशीतलताई का अर्थ तरावट है। पिछली अर्धाली में मनोहरता कहा, इस अर्धाली में माधुर्य्य कहा, अब आगे मङ्गलकारित्व कहेंगे।

सो जल सुकृत सालि हित होई।
राम भगतजन जीवन सोई॥
मेघा महिगत सो जल पावन।
सकिलि श्रवन मग चलउ सुहावन॥ ४॥

अर्थ—वह जल पुण्य रूपी धान के लिये हितकर है, और रामजी के भक्तों का तो जीवन ही है। वह सुहावन पावन जल धारणाशक्ति रूपी पृथ्वी को प्राप्त होकर कान के रास्ते से सिमिट कर चला।

सो जल—अर्थात् राम सुयश वर वारि, जो साधुरूपी मेघ से मिलता है, जिसे मधुर मनोहर कह आये हैं ( काम्य धर्मादि युक्त खारा

जल नहीं ) ऐसे जल का मङ्गलकारित्व दिखलाते हैं। वर्षा का जल मङ्गलकारी होता है। उससे धान उपजता है। यहाँ धान उपलक्षण है; सभी अन्न वर्षा से ही होते हैं, पर धान में विशेषता यह है, कि इसे बड़ी प्यास होती है, इसे पानी की बड़ी आवश्यकता होती है, पानी सूखा और धान गया। सो जगत् को यही अन्न देता है और यही जीवन अर्थात् पानीय भी है। अतः इससे बढ़कर मङ्गलकारी कौन हो सकता है।

सुकृत सालि—सुकृति, यथा—

तीर्थाटन साधन समुदाई।
जोग विराग ज्ञान निपुनाई॥
नाना कर्म मर्म व्रत दाना।
सञ्जम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुरु सेवकाई।
विद्या विनय विवेक बड़ाई॥
जहँ लगि साधन वेद बखानी।

सो सब सुकृत के ही अन्तर्गत हैं। सुकृत की धान से उपमा देने का कारण यह है कि सुकृत को रामयश की प्यास होती है, क्योंकि

पापवन्त कर सहज सुभाऊ।
भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥

पाप तो रामसुयश के विमुख होता है। अब धान के लिये खेत चाहिये, उसके उपजाने तथा रक्षा के लिये किसान चाहिये, तो श्री गोस्वामी जी कहते हैं।

'तुलसी यह तन खेत है,
मन बच करम किसान।
पाप पुण्य दुइ बीज हैं,
बवै सो लुनै निदान।

हितहोई—

भाव यह कि प्रवृत्तमार्गी ( कर्म पथ के पथिकों ) के लिये भी राम-सुयश की अपरिहार्य्य आवश्यकता है, रामसुयश से श्रवण कीर्तन और मनन से पुण्यरूपी धान दिन दूना रात चौगुना होता चला जाता है, बिना रामसुयश के पुण्यरूपी बीज से अंकुर निकल ही नहीं सकता है, बचा हुआ बीज भी नष्ट हो जाता है। बिना रामसुयश के जाने अति कष्ट से अनुष्ठित धर्म उत्साहपूर्वक ब्रह्मार्पण नहीं किया जा सकता, और

'हरिहिं समर्पे बिनु सत्कर्मा।
विद्या बिनु विवेक उपजाएँ॥

श्रम फल पढ़ें किये अरु पाएँ सब निष्फल हो जाता है।

रामभगत जन—रामभक्त चार प्रकार के होते हैं:—(१) ज्ञानी (२) जिज्ञासु (३) अर्थार्थी और (४) आर्त। ये चारों भक्त साधन भक्ति वाले हैं। गीताजी में कहा है 'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।' यहाँ मधुसूधन सरस्वतीजी चकार से पाँचवाँ भक्त मानकर उसका ज्ञानी में अन्तर्भाव करते हैं। लिखते हैं–चकारो यस्य कस्यापि निष्काम प्रेम भक्तस्य ज्ञानिन्यन्तर्भावः। ठीक यही मत ग्रन्थकार का भी है, यथा—

राम भगत जग चारि प्रकारा।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
चहू चतुर कहुँ नाम अधारा।
ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा॥

( १ ) नाम जीहँ जपि जागहि जोगी।
विरत विरंचि प्रपंच वियोगी॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा।
अकथ अनामय नाम न रूपा॥

( २ ) जाना चहहिं गूढ़गति जेऊ ।
नाम जीह जपि जानहु तेऊ ॥
( ३ ) साधक नाम जपहिं लव लाये ।
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये ॥
( ४ ) जपहिं नाम जन आरत भारी ।
मिटहि कुसंकट होहि सुखारी ॥

अब पाँचवाँ प्रेमाभक्ति वाले भक्त के लिये कहते हैं, जिनका उल्लेख श्री मधुसूदन सरस्वती जी ने चकार से किया है—

सकल कामना हीन जे राम भगति रसलीन ।
नाम सुप्रेम पियूषहृद तिनहु किये मनमीन ॥

'रामभगतजन' कहकर साधनभक्ति वाले चारों प्रकार के भक्तों का तथा सिद्धिभक्ति ( प्रेमाभक्ति ) के १४ प्रकार के भक्तों का जिनका विवरण ऊपर आ चुका है, ग्रहण किया ।

जीवन सोई—भाव यह कि श्री रामयश कर्म वालों के लिये तो हित है, पर उपासना काण्ड वालों का तो प्राण ही है । रामनाम की उपमा श्री गोस्वामीजी ने पूर्ण चन्द्र से दी है, यथा—राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम । गोस्वामीजी के ग्रन्थ में यह विचित्रता है, कि एक स्थान में जो उपमा दे दिया सो उन्हें स्मरण रहता है, दूसरे जगह यथावसर उसके अङ्गों की भी इस प्रकार उपमा देते है, कि उन सबों को यदि इकट्ठा किया जाय तो एक अलग रूपक खड़ा हो जाता है ।

जैसे एक स्थान पर अविद्या को निशा कहा, यथा—प्रथम अविद्या नशा नसानी, तो अब अमावास्या भी कहेंगे, यथा—नारि निबिड़ रजनी अँधियारी । पूर्णिमा भी कहेंगे, पूर्ण चन्द्र भी कहेंगे, तारागण भी कहेंगे, यथा—राका रजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम ।

अपर नाम उड्डगन सरिस बसहु भगवत उर व्योम। चाँदनी भी कहेंगे, यथा—राम चरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु। सज्जन कुमुद चकोर चित हित विशेष बड लाहु। नक्षत्र मण्डल भी कहेंगे, यथा—जग मङ्गल गुनग्राम राम के, इत्यादि। (जिसका वर्णन भूमिका में हो चुका है) और सब पृथक् पृथक् प्रसङ्गों में कहा गया है, अतः अर्थ करने में 'सूत्रेष्वदृष्टम् पदम् सूत्रांतरादनुवर्त्तनीयम् सर्वत्र' की भांति अन्य प्रसङ्गों की कही हुई चौपाइयों की सहायता लेने से बात खुलती है।

प्रकृतमनुसरामः। रामनाम की उपमा पूर्ण चन्द्र से दी है, और चरित की उपमा चाँदनी से दी है, एवम् चन्द्र और चंद्रिका की भांति नाम और चरित्र का नित्य सम्बन्ध दिखलाया। जिस भाँति पूर्ण चंद्र के ग्रहण से ही चंद्रिका का ग्रहण हो जाता है, इसी नाम के ग्रहण से चरित्र का ग्रहण हो जाता है बिना चंद्रिका के चन्द्र क्या है? कुछ भी नहीं, और बिना चन्द्र के चंद्रिका का अस्तित्व ही नहीं होता, एवम् बिना चरित्र के नाम निस्तेज है, और बिना नाम के चरित्र को आधार ही नहीं रहता।

ऊपर दिखला आये हैं कि सब प्रकार के भक्तों का आधार नाम है, यहाँ प्रमाणित होता है कि बिना चरित्र के नाम भी अकिञ्चित्कर है, अतः श्री रामयश को भक्तों का जीवन कहा। भावार्थ यह है कि कर्मकाण्ड के अनुयायियों को तो रामयश हित है, पर उपासनाकाण्ड वालों का तो प्राण ही है। इससे रामयश का मंगलकारी होना वर्णन किया।

**मेधामहिगत**—धारणा शक्ति को मेधा कहते हैं। यह सुमति भूमि में अगाध हृदय (शुद्ध मन) की प्रान्तभूमि है। यहीं का जल इकट्ठा होकर तालाब भरता है। श्रवणरन्ध्र में प्रवेश करने के पहले ही जल का मेधामहिगत होना कहा है। कारण यह है कि वेदांत के मत से

पाँच ज्ञानेंद्रियों में से दो इंद्रियाँ चक्षु और श्रोत्र ऐसी हैं जो बाहर जाकर विषय को ग्रहण करती हैं, न्यायशास्त्र श्रोत्रेन्द्रिय को बाहर जाने वाली नहीं मानते। 'वेदांतवेद्यं विभुम्' आदि पदों के प्रयोग से श्री गोस्वामीजी की अधिक श्रद्धा वेदांत में ही मालूम होती है, अतः श्रोत्रेन्द्रिय का बाहर जाकर विषय ग्रहण करना ही गोस्वामी जी को इष्ट है।

इंद्रिय के साथ वृत्ति भी बाहर जाती है, और निःसन्देह यह वृत्ति धारणाशक्ति वाली है नहीं तो शब्दार्थ का ग्रहण न होता। अतः राम-यशरूप वारिका साधुमेघ मुखच्युत होने पर पहिले मेधामहिगत होना ही प्राप्त है।

मेघ का जल पृथ्वी पर गिरकर पृथ्वी के दोष से दूषित हो जाता है, अर्थात् गंदला हो जाता है, पृथ्वी की ऊष्मा से सन्तप्त हो उठता है। उसी भांति मेधामहिगत रामयश भी श्रोता के मेधा के दोष से लिप्त हो जाता है, यथा—

भूमि परत भाढावर पानी।
जनु जीवहिं माया लपटानी॥

सो पावन जल—भाव यह कि वही आकाश का स्वच्छ जल जब पहिले पहल ग्रीष्म के तप्त धूल से भरी हुई पृथ्वी पर पड़ता है, तो गंदला और सन्तप्त तो अवश्य हो जाता है, अतः कुछ देर के लिये उसकी स्वच्छता और तरावट पृथ्वी के दोष से पराभूत हो जाती है, पर यह दोष आगन्तुक है, जल स्वभाव से ही मधुर और शीतल है, जहाँ वह स्थिर हुआ तहाँ फिर स्वच्छ और शीतल हो जाता है। जो प्रारम्भ में भी स्वच्छ था, और अन्त में भी स्वच्छ ही होगा, वह वर्तमान में आगन्तुक दोष आजाने पर भी स्वच्छ ही है, अतः 'सो जलपावन' कहा।

यहाँ पर गोस्वामी जी अपनी श्रवणविधि कहते हैं, कि साधु-मुख-च्युत मधुर मनोहर-मंगलकारी रामयश भी मेरी मेधा के दोष से अस्पष्ट हो गया, रजोगुण के योग से सन्तमसा हो गया, यथा—

श्रोतावक्ता ज्ञाननिधि कथा राम कै गूढ़। किमि समुझौ मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित विमूढ़।

तदपि कही गुरु बारहिं बारा।
समुझि परी कछु मतिअनु सारा॥

यहाँ वर्षा पर वर्षा होती गई, गुरुजी बार बार कहते ही गये। पहिली ही वर्षा में धूलि बह गई, रजोगुण का ताप कम हो गया, अब जल वैसा मटमैला न रह गया, बात विशेष स्पष्ट होती गई, इसी लिये कहते हैं कि 'समुझ परी कछु मति अनुसारा'।

श्रवण मग—श्रवणेन्द्रिय भले ही बाहर जाकर शब्द को ग्रहण करे पर उसका हृदय में प्रवेश श्रवणरन्ध्र द्वारा ही होता है। सुनने के बाद ही बात मन में आती है। जितने दूर तक की बातें सुनाई पड़ती हैं, वे सब देश मेधामहि की सीमा के भीतर हैं। उन सब बातों के हृद्गत होने का मार्ग श्रवणरन्ध्र है, इसी लिये उसे श्रवणमग कहा, यथा—

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई।
श्रवनरन्ध्र ह्वै उर जब आई॥

भावार्थ यह कि गुरुजी तथा अन्य महात्मागण बार बार रामयश का गान करते गये, और मैं यथामति उसे सुनता गया, और मन में बिठाता गया। मन में बिठाने के लिये श्रवणेन्द्रिय और मन दोनों का उपयोग है, किसी एक के भी न रहने से काम नहीं चलता, यथा—

लागी सुनै श्रवण मन लाई।

श्रवणरन्ध्र तो उस इंद्रिय का भौतिक द्वार है, वहीं श्रवणेन्द्रिय के अनुग्राहक देवता का स्थान है, यथा—

इन्द्री द्वार झरोखा नाना।
तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहि विषय बयारी।
ते हठि देहि कपाट उघारी॥
जब सा प्रभंजन उर गृह जाईं।

सुहावन सिमिटि चलेउ—रामयश के सुनने में बड़ा स्वाद है, अतः सुनने में वह सुहावन है यथा—

कहेउ राम वन गमन सुहावा।
उमा कहेउं सब कथा सुहाई॥
जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई।

शब्द होने का देश विस्तृत है, और श्रवण प्रणालिका बड़ी सङ्कीर्ण है, इससे रामयश जल का सिमिटकर आना कहा। अथवा सब चरित्र को एकाग्र होकर सुना। उसी एकाग्र होकर सुनने को 'सिमिट चलेउ कहाँ'। तालाबों में प्रांतभूमि का जल दूर दूर से सिमिटकर आता है। तालाब को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। इसी भांति अन्य स्थानों में वर्णित रामयश का समाचार परम्परा से रामयशरसिक के यहाँ अनायासेन आया ही करता है।

भरेउ सुमानस सुथल थिराना।
सुखद सीतरुचि चारुचिराना॥

अर्थ—सुन्दर मानस भर उठा, अच्छे थल में जलथिराया, और सुखद, ठण्ढा, सुन्दर, स्वादु और चिराना हुआ अर्थात् पक गया।

भरेउ सुमानस—मनस्तु द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेवच। अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितम्। मन दो प्रकार का होता है शुद्ध और अशुद्ध। कामसंकल्प वाला मन अशुद्ध है, और काम विवर्जित मन शुद्ध है। सो कामना-रहित मन सुमानस है। इसीको अगाध हृदय कह आये हैं। काम से भरा न होने से इसमें गहराई है।

अब वह मन राम सुयश से भर गया। उसमें किसी दूसरे वस्तु के लिये स्थान नहीं है सुमानस शब्द यहाँ श्लिष्ट है। इसके दोनों अर्थ का यहाँ ग्रहण है, तालाब ( अर्थ ) के पक्ष में तो वर्षा के जल से भर गया, और ( अर्थ ) के पक्ष में राम सुयश से भर गया।

सुथल थिराना—सुथल में ही जल थिराता है। जो स्थल गम्भीर हो, जहाँ कोई बाधा न हो, वहीं धीरे धीरे जल की मिट्टी नीचे बैठ जाती है, और जल स्वच्छ हो जाता है इसीको थिराना कहते हैं। कुथल में जल नहीं थिरा सकता। जिस स्थान में गहराई नहीं है, जहाँ जन-समूह का विशेष सञ्चार है, वहाँ का जल लोगों के आने जाने से सदा मटमैला बना रहता है, यथा —सदा मलीन पंथ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिरान्यौ 'मेधा महिगत भो जल पावन। सकिलि श्रवण मग चलेउ सुहावन' से श्रवण कहा। 'भरेउ सुमानस' कहकर मनन कहा, क्योंकि सुनी हुई बात को मन में बिठाना ही मनन करना है, अब 'सुथल थिराना' से निदिध्यासन कहते हैं। मन को थिर करना समाधि है। रामयश के विषय में मन को एकाग्र किया। यही संप्रज्ञात समाधि है। यथा —

हर हिंय रामचरित सब आये। प्रेम पुलकि लोचन जल छाये॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा॥

सुखद – वर्षाकाल में जल निर्मल हो नहीं सकता, कुछ न कुछ दोष उसमें लगा ही रहता है। इसी भांति, श्रवणकाल में विद्या निर्दोष हो नहीं सकती, रजोगुण बना ही रहता है, और रजोगुण के रहते सुख कहाँ? शरद के अंत में अर्थात् कार्तिक में जल पुराना होकर पक जाता है। एक दम निर्मल हो जाता है, तब जाकर सुखद होता है। इसी भांति रामसुयशरूपिणी विद्या, श्रवण के बाद बहुत दिनों तक मनन निदिध्यासन करने पर अभ्रांत होकर सुखद होती है।

सीतरुचि चारु—अपनी मेधा के दोष से जो जो रामयश के गुण आच्छादित हो गये थे, सो निदिध्यासन से फिर प्रकट हो गये। अभ्रान्त होकर वह स्वच्छ हो गया, मधुरता और सीतलता उसमें आ गई। भाव यह कि ग्रन्थकर्ता ने गुरुमुख से रामयश श्रवण के बाद बहुत दिनोंतक उसका मनन और निदिध्यासन किया, तब उसके गुण प्रकट हुए, विषय अभ्रान्त हो गया, उसमें आनन्द आने लगा, दुख दूर हो गये, यथा—जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहू। पायेउ परम विश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

चिराना—शरतकाल में जल पुराना होकर हेमन्त में चिराना होता है। भाव यह कि कवि ने बाल्यावस्था में गुरुमुख से सुना, यथा—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपान तब अति रहेउँ अचेत॥

बाल्यावस्था के बाद युवावस्था आई सचेत हुए, तब मनन किया, मध्यावस्था में निदिध्यासन किया, अतः 'चिराना' कह रहे हैं।

**दो० सुठि सुन्दर संवाद वर विरचे बुद्धि विचारि।**
**तेइ एहिं पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ३६**

अर्थ—अत्यन्त सुंदर और श्रेष्ठ संवाद जो बुद्धि से विचार करके मैंने विरचा है, वही इस पवित्र सुन्दर तालाब के चारो मनोहर घाट हैं।

**सुठि सुन्दर संवाद वर**—संवाद पक्ष में सुठि सुंदर और घाट के पक्ष में मनोहर कहा है, इससे सिद्ध होता है कि सुठि सुंदर ही मनोहर है। यद्यपि सुंदरता और मनोहरता में वस्तुभेद नहीं है, तथापि सुंदरता के उत्कर्ष में मनोहरता आती है, यथा—

तब तेखी मुद्रिका मनोहर।
राम नाम अंकित अति सुंदर॥

प्रश्नोत्तर अथवा शङ्का समाधान को संवाद कहते हैं। अति गहन विषय भी संवाद रूप से कहे जाने पर सरल हो जाता है। यहाँ संवाद

का विषय परम मनोहर रामचरित्र है, इस लिये इस संवाद को परम मनोहर कहा, और इसके श्रोता वक्ता दोनों श्रेष्ठ पुरुष हैं, अतः 'बर' कहा यथा—

ते श्रोता वकता समसीला।
सम दरसी जानहिं हरि लीला॥
जानहिं तीन काल निज ज्ञाना।
करतल गत आमलक समाना॥

इस ग्रन्थ में चार संवाद हैं:—( १ ) उमा शम्भु संवाद ( २ ) गरुड़ भुसुण्डि संवाद ( ३ ) भरद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद और ( ४ ) तुलसी साधु-समाज संवाद।

इन चारो संवादों में चार पृथक् पृथक् कल्पों की कथाएँ हैं। श्रीरामावतार एक कल्प में एक ही बार होता है, यथा—"कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं।" श्रीरामचरित मानस में चार कल्पों की कथाएँ हैं, यथा—जनम एक दुइ कहौं बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी।

( १ ) द्वारपाल हरिके प्रिय दोऊ।
जय अरु विजय जान सब कोऊ॥
विप्र-शाप ते दूनौ भाई।
तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनक कसिपु अरु हाटकलोचन।
जगत विदित सुरपति-मद मोचन॥
धरि वराह वपु एक निपाता।
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा॥
भये निसाचर जाइ तेइ महावीर बलवान।
कुम्भकरन रावन सुभट सुर विजयी जग जान॥

एक बार तिन्हके हित लागी।
धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥

यहाँ कश्यप अदिति पिता माता हुए। रावण कुम्भकर्ण दो ही हुए, विभीषण का होना नहीं कहते।

(२) एक कलप सुर देखि दुखारे।
समर जलंधर सन सब हारे॥
परम सती असुराधिप नारी।
तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी॥
छल करि टारेउ तासु व्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मर्म तब श्राप कोप करि दीन्ह॥
तासु साप प्रभु कीन्ह प्रवाना।
कौतुक निधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भएऊ।
रन हति राम परम पद दएऊ॥

यहाँ भी कश्यप अदिति पिता माता हुए। केवल रावण ही हुआ। कुम्भकर्ण विभीषण का होना नहीं कहते।

(३) नारद श्राप दीन्ह एक बारा।
कलप एक तेहि लगि अवतारा॥

इस कल्प में भी कश्यप अदिति पिता माता हुए। रावण कुम्भकर्ण दो ही भाई हुए।

(४) अपर हेतु सुनु सैलकुमारी।
कहौं विचित्र कथा विस्तारी॥
केहि कारन अज अगुन अरूपा।
ब्रह्म भएउ कोसलपुर भूपा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी।
सती सरीर रहिहु बौरानी॥

इस कल्प में मनु शतरूपा पिता माता हुए। रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तीन भाई हुए।

सो तीन कल्प की कथाएँ अति संक्षेप में कहकर चौथे कल्प की कथा विस्तार से शङ्कर भगवान ने कहा। भुसुण्डिजी ने तीसरे कल्प की कथा कहा, यथा —

पुनि नारद कर मोह अपारा।
कहेसि बहुरि रावन अवतारा॥

प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। इस क्रम से यही प्राप्त होता है कि दूसरे कल्प की कथा याज्ञवल्क्य जी ने कहीं, और पहिले कल्प की कथा गोस्वामीजी ने कही। चारो कल्पों की कथाएँ एक सी हैं, अतः एक साथ कही गईं। जहाँ भेद पड़ा है, वहाँ दिखला भी दिया है, कि यह विशेष कथा किस कल्प की है। यथा सेतुबन्ध की बात सुनकर मन्दोदरी रावण को समझाती है कि—

अतिबल मधुकैटभ जेहि मारे।
महाबीर दिति सुत संहारे॥
जेहि बलि बाँधि सहस भुज मारा।
सोइ अवतरेउ हरन महिभारा॥

यहाँ 'दिति सुत संहारे' पद से स्पष्ट है कि यह कथा पहिले कल्प की है, जिसमें जय विजय हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष हुए थे। 'विरह वन्त भगवन्तहि देखो। नारद मन भा सोच विशेषी' कहकर लक्षित कर दिया कि 'प्रभु नारद संवाद' प्रसङ्ग तीसरे कल्प की कथा है इत्यादि।

श्री गोस्वामीजी ने वैकुण्ठनाथ का रामावतार कहा, याज्ञवल्क्यजी ने क्षीरशायी नारायण का रामावतार कहा, भुसुण्ड ने भी उन्हींका दूसरा रामावतार कहा, और शङ्कर भगवान् ने ब्रह्म का रामावतार कहा। यद्यपि वैकुण्ठ-नाथ क्षीरशायी और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है फिर भी

उपाधिभेद से ऐश्वर्य में कुछ तारतम्य माना ही जाता है। तो जिन संवादों में वैकुण्ठनाथ, नारायण तथा ब्रह्म के अवतारों की कथाएँ हैं, उन्हें 'सुठि सुंदर संवाद बर' कहना ही उपयुक्त है।

दूसरी बात यह है कि श्रीरामचरित्र को मणिमाणिक्य कहा है, यथा—

सूझहिं रामचरित मनि मानिक।
गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिज॥

सो श्री राम कथा की भी यहाँ चार खानि कही गई है। जिनके ऊपर गुरू की कृपा हो जाती है, वेही बतला सकते हैं कि यह कथा किस खानि की है। उनमें से शङ्करजी की कथा को सर्प मणि कहा है, क्योंकि गरल कण्ठ होने से, इन्हें सर्प से उपमित करने में समान धर्म मिल जाता है। याज्ञवल्क्य जी की कथा माणिक्य है क्योंकि यह 'पावन पर्वत वेद पुराना' से निकलती है, इस बात को 'कर गत वेद तत्व सब तोरे' कहकर इङ्गित किया है। भुसुण्डिजी कथा गजमुक्ता है, क्यों कि भुसुण्डिजी को हाथी की तरह खाने के दाँत दूसरे और दिखाने के दूसरे हैं। देखने में काग, पर बोलते हैं मधुर, यथा—मधुर बचन बोलेउ तब कागा। अतः ये कथाएँ मणिमाणिक्य मुक्ता की भाँति स्वभाव से ही सुठि सुंदर हैं।

तिसपर ग्रन्थकर्ता का और भी कहना है कि शिवजी, याज्ञवल्क्यजी तथा भुसुण्डिजी सुकवि हैं, अतः इनकी कविता मणि। माणिक मुक्ता की भाँति, जहाँ उत्पन्न हुई है वहाँ वैसी शोभित नहीं हुई, जैसी कि मेरे विरचित सम्वाद में पड़कर शोभित हुई, यथा—

मनि मानिक मुक्ता छवि जैसी।
(१. अहि (२) गिरि (३) गज सिर सोहन तैसी॥
(१) नृप (२) किरीट (३) तरुनी तन पाई।
लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥

तैसहिं सुकवि कवित्त बुध कहहीं।
उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं ॥

यहाँ ज्ञान नृप है, यथा--'सचिव विराग विवेक नरेसू', कर्म मुकुट है, यथा—मुकुट न होहिं भूप गुन चारी। साम दाम अरु दंड विभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा। सो साम दाम दण्ड विभेद कर्म हैं, उसे अपन्हुति अलङ्कार द्वारा मुकुट कहा। उपासना तरुणी है, यथा—भक्ति सुतिय ( कल करन विभूषन )। सो ये तीनों कविताएँ ग्रन्थकर्ता के ज्ञानघाट, कर्मघाट और उपासना घाटपर आकर क्रमशः अत्यन्त शोभित हुईं, अतः 'सुठि सुंदर सम्वाद वर' कहा। रह गया तुलसी साधु सम्वाद। उसे ग्रंथ कर्ता सीपी का मोती कहते हैं, यथा—

हृदय सिंधु मति सीप समाना।
स्वाती सारद कहहिं सुजाता ॥
जौं बरखै बर वारि बिचारू।
होइ कवित मुकता मनि चारू ॥
जुगुति बेधि पुनि पोहिअहि।
राम चरित वर ताग ॥
पहिरहिं सज्जन विमल उर।
सोभा अति अनुराग ॥

यह सम्वाद भी सुठि सुंदर है, इसकी शोभा भी सज्जन का उर पाकर अत्यन्त बढ़ गई' अतः यह भी सुठि सुन्दर सम्वाद वर है, अर्थात् चारों घाट रत्नमय हैं।

विरचेउ बुद्धि बिचारि —पहिले 'मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई, कहा था, पर सम्वाद की रचना में इन्होंने किसी का अनुकरण न किया। चार चार कल्प की कथाओं का एक साथ कथन कहीं भी नहीं पाया जाता। सभी ने किसी न किसी कल्प विशेष के रामावतार की कथा कही है, यथा —

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं ।
चारु चरित नाना विधि करहीं ॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई ।
परम पुनीत प्रबंध बनाई ॥

यहाँ पर ग्रंथकार ने अपनी बुद्धि से काम लिया है, किसी का अनुकरण नहीं किया, इसी लिये कहते हैं कि विरचे बुद्धि बिचारि'। कारण यह कि वेद में तीन काण्ड हैं, यथा (१) कर्मकाण्ड (२) ज्ञान काण्ड और (३) उपासना काण्ड। कर्मकाण्ड साधारण अधिकारियों के लिये, उपासना काण्ड मध्यम अधिकारी के लिये, और ज्ञान काण्ड परम-अधिकारी के लिये है, यथा —

मोहि परम अधिकारी जानी ।
लागे करन ब्रह्म उपदेसा ॥
अज अद्वैत अगुन हृदयेसा ।

पर ऐसे हीन वीर्य्य प्राणी है, जिनसे तीनों में से एक भी नहीं सधता, ऐसे दीन पुरुष के लिये भी उपाय है, यदि कुछ भी किया न हो तो,—

भाव कुभाव अनख आलस हूँ ।
नाम जपत मङ्गल दिसि दस हूँ ॥

ग्रंथकर्ता ने अपने को चौथी कोटि में माना हैं, अतः कहते हैं कि 'कर्मठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ बिहाइ गो राम दुआरे दीन। एवम् चार प्रकार के अधिकारी हुए, और वेदावतार रामयश ही सबका शरण हैं, यथा—

जिह कर मन इन्ह सन नहि राता ।
तेजन वंचित किए विधाता ॥

सभी रामावतारों से नाना विधि चरित होते हुए भी, मुख्य चरित सीताहरण रावण वधादि सब में होता है। जब जब कंस होगा, तब तब

उसके लिये कृष्णावतार होगा ही, जब शुम्भ निशुम्भ होंगे तब भगवती चण्डी का प्रादुर्भाव ही होगा, एवम् जब जब रावण होगा, तब तब उसके लिये रामावतार होता ही है। अवतार ग्रहण के कारण में भेद पड़ता है। सो उन्हीं कारणों को पकड़ कर गोस्वामी जी ने चारों प्रकार के अधिकारियों के लिये पृथक् कल्प के रामावतार चुन लिये।

प्रथम कल्प में जय और विजय की दीनता पर ही द्रवीभूत होकर साक्षात् वैकुण्ठनाथ को कई अवतार धारण करने पड़े, यथा—

तीनि जनम द्विज बचन प्रमाना।
मुकुत न भये हते भगवाना॥
एक बार तिन्ह के हित लगी।
धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥

यहाँ प्रणत अनुरागी कहकर दीनवत्सलता दिखाया। अतः इस कल्प की कथा गोस्वामी जी ने अपने लिये चुना।

दूसरे कल्प में तो कर्मदृष्टि से वस्तु तस्तु अपराध कर डाला था। यद्यपि कर्म शुभाशुभ की बाधा क्षीरशायी भगवान् को नहीं हो सकती तथापि कर्म मर्य्यादा के स्थापन के लिये, वञ्चित व्यक्ति के दिए हुए दण्ड को स्वीकार किया, यथा—

छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥
तासु श्राप हरि कीन्ह प्रमाना।
कौतुक निधि कृपाल भगवाना॥

अतः इस कल्प की कथा कर्म के अधिकारियों के लिये चुना।

तीसरे कल्प में भक्त के कल्याण के लिये बड़ा बड़ा प्रयत्न किया, शाप भी पाया, उसे प्रमाण भी किया, सब भाँति भक्त (नारद) की मर्यादा रखते ही गये, अतः उपासना के अधिकारी के लिये इस कल्प की कथा चुनी।

चौथे कल्प में साक्षात् ब्रह्म को नयन विषय करने के लिये स्वायम्भूमनु ने तप किया, प्रकट होने पर सरकार ने उनका पुत्रत्व स्वीकार किया। ब्रह्म की कथा होने से ग्रन्थकर्त्ता ने उसे ज्ञान के अधिकारियों के लिये चुना।

इन कथा के वक्ता भी तत्तदवतार के गुण प्राधान्यानुसार गुणवाले थे, अतः उनके उपदेश भी स्वभावानुकूल ही कथा के बीच बीच में होते गये हैं। सो सब प्रकार के अधिकारियों का काम एक ही राम चरित मानस से चल जाय, इस बात को बुद्धि से विचार करके ग्रन्थकर्त्ता ने चारों सम्वादों की अपने राम चरित मानस के लिये रचना की।

ते एहि पावन सुभगसर—मल के दूर करने वाली वस्तुयें पावन कहलाती हैं, और मन को आकर्षण करने वाली, सुन्दर कहलाती है। मन स्वभाव से ही विषय की ओर आकृष्ट होता है। अतः पावन और सुन्दर दोनों गुणों का एकत्र होना दुर्लभ है, परन्तु यह सर पावन भी है, और सुन्दर भी है। पावन इसलिये है कि वेदान्तवेद्य पुरुष का इस में वर्णन किया गया है, यथा—वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः।

जेहिमहँ आदि मध्य अवसाना।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥

और सुन्दर इसलिये है कि विषयी जीवों के भी चित्त को आकर्षित करता है। यथा—विषइन्ह कहँ पुनि हरिगुन ग्रामा।
श्रवण सुखद अरु मन अभिरामा॥

सो इस पवित्र सुन्दर सर 'मानस' में चार संवाद हैं, जिनका उल्लेख ऊपर आ चुका है। इन में प्रथम दैन्य प्रधान सम्वाद साधु और ग्रन्थकार का है। इनसे कोई पूछता नहीं है, पर 'करन' पुनीत हेतु निजबानी' ये स्वयम् अति उत्सुक हैं, कवि समाज में वरदान माँगते हैं कि 'साधु समाज भनिति सनमानू'। जानते हैं कि मुझ से कहते न बनेगा, पर अपनी रुचि से लाचार हैं, अतः कहते हैं—

मति अतिनीचि ऊंचि रुचि आछी।
चहिय अमिअ जग जुरै न छाछी॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई।
सुनिहहिं बाल बचन मनलाई॥
जौं बालक कह तोतरि बाता।
सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥ इत्यादि
निज बुधिबल भरोस मोहि नाही।
ताते विनय करौं सब पाहीं॥

दूसरा याज्ञवल्क्य भरद्वाज का कर्म प्रधान सम्बाद है। प्रश्नकर्त्ता भरद्वाज जी का कर्म विषयक ही प्रश्न हुआ, यथा—

एक राम अवधेस कुमारा।
तिन्ह कर चरित विदित संसारा॥
नारि बिरह दुख लहेउ अपारा।
भयउ रोषरन रावन मारा॥

ये दोनों कर्म मानो प्रश्नकर्त्ता को पसन्द नहीं आये। उत्तर में याज्ञवल्क्य जी कहते हैं चाहहु सुनै राम गुन गूढा, कीन्हिहु प्रश्न मनहु अति मूढ़ा'। कर्म विषयक प्रश्न करने से ही 'मनहु अति मूढ़ा' कह रहे हैं। फिर भी शीलगुण की परीक्षा करके तब रामचरित्र कहा, अतः यह सम्बाद कर्म प्रधान है।

तीसरा उमाशम्भु संवाद ज्ञान प्रधान है, क्योंकि उमाको ज्ञान विषयक सन्देह हुआ। पहला प्रश्न उनका ब्रह्म विषयक है, यथा—

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।
सोकि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद।

दूसरा प्रश्न स्पष्ट ज्ञान विषयक है, यथा—

विष्णु जो सुरहित नर तनु धारी।
सोउ सरवज्ञ जथा त्रिपुरारी॥

खोजै सोकि अज्ञ इव नारी।
ज्ञान धाम श्रीपति असुरारी॥

उत्तर देते हुए पहिले ही शङ्कर भगवान् ब्रह्म निरूपण करते हैं, तथा—

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई।
जागे जथा सपन भ्रम जाई॥

अतः यह सम्वाद स्पष्टतः ज्ञान प्रधान है।

चौथे गरुड़ भुसुण्डि संवाद में ऐश्वर्य्य विषयक सन्देह है, यथा—

सो अवतार सुनेउ जगमाहीं।
देखेउ सो प्रभाव कछु नाहीं॥
भवबन्धन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नाग पास सोइ राम॥
ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्य योश्चैवषण्णां भगइतीरणा॥

भगवान् में समग्र ऐश्वर्य्य है, सो भगवान् में ऐश्वर्य्य का अपकर्ष भक्त को सह्य नहीं है, अतः 'उपजा हृदय प्रचंड बिषादा।' उत्तर देते हुए भुसुण्डि जी ऐश्वर्य्य का वर्णन करते हैं।

रामकाम सत कोटि सुभगतन।
दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन॥
विष्णु कोटि सम पालन कर्ता।
रुद्र कोटि सतसम संहर्ता॥
धनद कोटि सतसम धनवाना॥
माया कोटि प्रपंच निधाना। इत्यादि

अतः चौथा संवाद भक्ति प्रधान है।

घाट मनोहर चारि—यद्यपि सोपान श्रेणी को ही घाट कहते हैं, तथापि पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं के भेद से, उन्हीं दिशाओं में स्थित सोपान पंक्तियों को क्रम से पूर्व घाट दक्षिण घाट पश्चिम घाट और उत्तर घाट कहते हैं। ग्रन्थकार ने सबसे पूर्व कथन प्रारम्भ किया, अतः वह पूर्व घाट हुआ, उसके बाद याज्ञवल्क्य जी की कथा प्रारम्भ हुई, अतः प्रदक्षिण क्रम से वह दक्षिण घाट हुआ, तदनन्तर शङ्कर जी की कथा प्रारम्भ हुई, अतः वह पश्चिम घाट हुआ। अन्त का भुसुण्डि जी की कथा उत्तर घाट हुई।

यहाँ चारों संवादों को चार घाट कहा है। अतः संवादों के विषय प्राधान्यानुसार उन चारों का क्रम से दैन्यघाट, कर्मघाट, ज्ञानघाट और उपासनाघाट भी नाम पड़ा।

दैन्यघाट, यथा—

निज सन्देह मोह भ्रम हरनी।
करौं कथा भव सरिता तरनी॥

कर्मघाट, यथा—

बुध विश्राम सकल जन रंजनि।
राम कथा कलि कलुष विभंजनि॥
कलिकलुष का नाश विधिनिषेध से है।

ज्ञानघाट, यथा—

राम कथा कलि पन्नग भरनी।
पुनि विवेक पावक कहँ अरनी॥

उपासना घाट, यथा—

राम कथा कलि कामद गाई।
सुजन सजीवन मूरि सोहाई॥
( रघुपति भगति सजीवनि मूरि )

तालाबों में चार घाट होते ही हैं। एक उनमें से गऊ घाट होता है। जिससे गौ हाथी घोड़े, तथा अंधपंगु पौरुषहीन लोग उतर कर जल प्राप्त कर सकते हैं, उसकी बनावट ही ऐसी होती है, जिसमें असमर्थ की गति हो सके। सो यहाँ भी दैन्यघाट की बनावट ऐसी है कि कर्मज्ञान उपासना से रहित पुरुषार्थहीन पुरुष का भी उद्धार हो सके, अतः उन्हें नाम पकड़ा दिया गया, यथा—

भाव कुभाव अनख आलस हूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

इसी नाम को पकड़े पकड़े वे सम्पूर्ण पुरुषार्थ के भागी होते हैं, यथा—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नाम दूहूँते।
किय जेहि जुग निजबस निज बूते॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जनकी।
कहहुँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी॥
एकु दारुगत देखिय एकू।
पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें।
कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म रामतें॥
व्यापकु एक ब्रह्म अविनासी।
सत चेतन घन आनँद रासी॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें।
सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन तें॥

निरगुन ते एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार ।
कहहुँ नामु बड़ राम तें, निज विचार अनुसार ॥
राम भगत हित नर तनुधारी ।
सहि संकट किय साधु सुखारी ॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा ।
भगत होहिं मुदमंगल बासा ॥
राम एक तापस तिय तारो ।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥
रिषिहित राम सुकेतु सुता की ।
सहित सेन सुत कीन्ह बिबाकी ॥
सहित दोष दुख दास दुरासा ।
दलइ नाम जिमि रवि निसि नासा ॥
भंजेउ राम आप भव चापू ।
भवभय भंजन नाम प्रतापू ॥
दंडक वन प्रभु कीन्ह सुहावन ।
जनमन अमित नाम किय पावन ॥
निसिचर निकर दलेउ रघुनंदन ।
नाम सकल कलि कलुष निकंदन ॥
सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुनगाथ
राम सुकंठ विभीषन दोऊ ।
राखे सरन जान सब कोऊ ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे ।
लोक वेद वर बिरद विराजे ॥
राम भालु कपि कटक बटोरा ।
सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ॥

नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं।
करहु बिचार सुजन मन माहीं॥
राम सकुल रन रावन मारा।
सीय सहित निजपुर पग धारा॥
राजाराम अवध रजधानी।
गावत गुन सुर मुनिबर बानी॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती।
बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने।
नाम प्रसाद सोच नहिं सपने॥
ब्रह्म राम तें नामु बड़, बरदायक बरदानि।
राम चरित सतकोटि महँ, लिय महेस जियजानि॥

दूसरा घाट ऐसा होता है जिसमें सर्व-साधारण स्नान करते हैं। यह कर्मघाट है। वर्णाश्रम धर्मानुसार चलनेवाले इस घाट पर स्नान करने वाले हैं, तथा—

वर्णाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥

सर्वसाधारण का सम्बन्ध सभी से है, अतः इसे पंचायती घाट भी कहते हैं।

तीसरा घाट ऐसा होता है, जहाँ अधिकारी वर्ग स्नान करते हैं। यह राजघाट है। यह ज्ञान घाट होने से सभी भाँति सुन्दर होता है, यथा—जीवन मुकुत महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरन्तर तेऊ।

चौथा पनिघट है, यथा—

पनिघट परम मनोहर नाना।
तहाँ न पुरुष करहिं असनाना॥

यहाँ परदा होता है; इसका सम्बन्ध रहस्य विभाग से है, इसीलिये यहाँ के श्रोता वक्ता पक्षी रक्खे गये हैं। यह घाट अन्य सभी घाटों से पृथक है, क्योंकि किसी घाट से इसमें रास्ता नहीं है, यथा –

यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानै कोइ।
जो जानै रघुपति कृपा सपनेहुँ मोह न होइ॥

अतः इसकी कथा ८४ प्रसंगों में अलग उत्तरकांड में कही गई है। इस पनिघट में भक्तिरहित व्यक्ति का प्रवेश नहीं है। यहाँ तो "भजहिं जे मोहिं तजि सकल भरोसा" उन्हीं का प्रवेश है।

इस भाँति ये चारो घाट बड़ी सुन्दरता से बनाये गये हैं। सब घाटों का परस्पर सम्बन्ध भी बना है, और सब अलग अलग भी है। प्रथम घाट का द्वितीय से सम्बन्ध, यथा—

जागबलिक जो कथा सुहाई।
भरद्वाज मुनि बरहिं सुनाई॥
कहिहौं सोइ सम्वाद बखानी।
सुनहु सकल सज्जन सुखु मानी॥

द्वितीय घाट का तृतीय से सम्बन्ध, यथा—

कहौं सो मति अनुहारि, अब,
उमा सम्भु संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि,
सुनि मुनि मिटिहि विषाद॥

तीसरे का चौथे से सम्बन्ध, यथा—

सुनु सुभ कथा भवानि रामचरित मानस विमल।
कहा भुसुंडि बखानि सुना विहग नायक गरुड़॥

इसी भांति अन्त में भी सम्बन्ध दिखला कर यह द्योतित किया कि चारो घाट का आदि से अन्ततक सम्बन्ध है, यथा—

एहि कलिकाल न साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप व्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइय रामहिं।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहिं॥
यह सुभ सम्भु उमा सम्बादा।
सुख संपादन समन विषादा॥
मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तब प्रसाद विश्वेस।
उपजी रामभगति दृढ़, बीते सकल कलेस॥
तासु चरन सिर नाइ करि, प्रेम सहित मति धीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब, हृदय राखि रघुबीर॥

ये एकही तालाब के चारो घाट हैं, अतः चारो एक होने पर भी दिशाभेद ( दृष्टिकोण भेद ) से पृथक हैं।

दैन्यघाट के सम्मुख ज्ञानघाट पड़ता है, कर्म उपासना बाएँ दहिने पड़ते हैं, इसी भांति कर्मघाट के सम्मुख उपासना घाट पड़ता है, दैन्य और ज्ञान दहिने बाएँ हैं। भाव यह कि 'ज्ञानमार्गं तु नामतः' नामसे ज्ञान मार्ग की प्राप्ति होती है।

दैन्य मार्गवाले को केवल नाम बल है, अतः ज्ञान उसके सम्मुख पड़ता है। कर्म और उपासना का समुच्चय विहित है, यथा—

विद्याञ्चाविद्याञ्चयस्तद्वेदो भयं सह।
अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।

कर्म और उपासना दोनों का जो एक साथ सेवन करता है, सो कर्म से मृत्यु को तिरकर उपासना से अमृत का भोग करता है, अतः कर्मघाट को उपासना के सम्मुख कहा। दाएँ बाएँ वाले ( पार्श्ववर्ती ) का भी प्रभाव पड़ता ही है, पर वे साक्षात् सम्मुख नहीं हैं।

'जो भुसुण्डि मन मानस हंसा', 'हर हृदि मानस बाल मारलं,' 'मुनि मन मानस हंस निरन्तर' आदि पदों से पता चलता है कि भुसुंडि शम्भु तथा याज्ञवल्क्य के पृथक पृथक् मानस हैं, पर घाट न बनने से ये दुर्गम हैं, तथा-यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शम्भुनादुर्गमम्। श्री गोस्वामी जी ने तो तीनों मानसों को, घाट बाँधकर, अपने मानस में स्थान दिया, और दैन्यघाट के मिस से, आप भी एक ओर बने रहे। इस भाँति सब प्रकार के अधिकारियों के लिए रामायण सुलभ कर दिया।

इन सब बातों पर ध्यान रखने से पता चल जाता है, कि कौनसा [illegible] कथा किस घाट की है, और सम्बोधनों पर ध्यान रखने से यह पता चलता है, कि कौनसा उपदेश किस घाट से सम्बन्ध रखता है, अर्थात् कैसे अधिकारियों के लिये कहा गया है।

श्रीमानस प्रसङ्गस्य टीका भावप्रकाशिकाम्।
रामार्पणं करोम्यद्य तेन मे प्रीयताम् प्रभुः॥